

THE FREE INDOLOGICAL COLLECTION

WWW.SANSKRITDOCUMENTS.ORG/TFIC

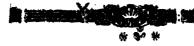
FAIR USE DECLARATION

This book is sourced from another online repository and provided to you at this site under the TFIC collection. It is provided under commonly held Fair Use guidelines for individual educational or research use. We believe that the book is in the public domain and public dissemination was the intent of the original repository. We applaud and support their work wholeheartedly and only provide this version of this book at this site to make it available to even more readers. We believe that cataloging plays a big part in finding valuable books and try to facilitate that, through our TFIC group efforts. In some cases, the original sources are no longer online or are very hard to access, or marked up in or provided in Indian languages, rather than the more widely used English language. TFIC tries to address these needs too. Our intent is to aid all these repositories and digitization projects and is in no way to undercut them. For more information about our mission and our fair use guidelines, please visit our website.

Note that we provide this book and others because, to the best of our knowledge, they are in the public domain, in our jurisdiction. However, before downloading and using it, you must verify that it is legal for you, in your jurisdiction, to access and use this copy of the book. Please do not download this book in error. We may not be held responsible for any copyright or other legal violations. Placing this notice in the front of every book, serves to both alert you, and to relieve us of any responsibility.

If you are the intellectual property owner of this or any other book in our collection, please email us, if you have any objections to how we present or provide this book here, or to our providing this book at all. We shall work with you immediately.

-The TFIC Team.



जैन धर्म और मुर्गि

--:० अर्थात् ः

उपासना रहस्य

. लखक ---

श्रीयुन विरधीसासजी सठी, कांज

विमान्तमुख-चेत्य-दान-परिवृजनाचारिमकाः

क्रिया बहुविधःसुभृत्मरण्पिडनाह्नवः।

त्वया व्यक्तितकेवलेन नहि देशिताः किंतुता-

स्वाय प्रमृतभाक्तिः स्वयमनुष्टिताः श्रावर्कः॥

-पात्रकेसीर स्रोत्र ।

प्रकाशक-

बानचन्द्र जैन, कारा

(राजपुताना)

🕸 (बेह्रमत्थ प्रस्य कोटा, 🗲

वीर	सेवा	मि	न्द र	
	दिहल	रो .		
		•		
	•			
	•			
क्रम सन्पा				
कान नर				
tord the				
स्कृत र	-			

॥ निवदन ॥

जेन समाज की प्रचालने उपासना एकति अपन उँदृश्य से अत्यत भिर गई ६ ग्रीर इसने जी २ ड्रानिया होरही है व कि सी से द्विपी नहीं है किन्तु फिर भी हम अधिकास और सहिबाट के इतने दास यने हुए है कि अपनी ज्ञात की द्वीन श्रवस्था पर दो २ श्रांस बहाकर उसे सुधारने की कोशिस नक नहीं करते। लेखक ने प्रस्तुत प्रस्तक में जैन धर्मानुसार उपा-सना के स्वरूप का (जिससे, हमारे विचार से, किसी भी धर्म के मानने वालों के। कोई विरोध नहीं होसकता) प्रचलित द्रश्यादि आदम्बर पूर्ण पुजापद्धति के पन में उठाई जाने बाली युक्तियों का युक्ति-युक्त उतर देते हुए कितना सुन्दर और सर्वाङ्ग पूर्ण विवेचन किया है यह बहुत पुस्तक के देखने से ही संबंध रखता है। पाठकों से हमारा सानुरोध निवदन है कि व इस पुस्तक के खूब ग्रीर के साथ सार्वत पढ़ेन तथा उस पर पूर्ण विचार करने की अवश्य कृपा करें। केवल विचार करने से ही काम नहीं चलगा ! खावण्यकता इस बात की है कि हम समा-ज में प्रचलित इस उपासना पद्धति और इसीप्रकार समय के प्रभाव से अपने अर्म में घुसी हुई दूसरी गंदी वालों की जो भी हमें मुक्ति विरुद्ध गालम पड़े, अपनी समाज स शीव निकास फेंकन के लिए प्रयत्नशील होकर प्रत्येक आवश्यक सुधार की कार्य रूप में परिगत कर दिखायें।

श्राशा है सुधार प्रेमी बन्धु श्रपनी इस जैन **जाति की होन** ब्ह्या पर तरस लाकर उसे जैन धर्म के सन्य मार्ग **पर लगा देने** का फाटबड़ हो जावेंगे।

ज्ञानगरः जैनः कारा

कृपया पुस्तक पद्दं में प्रथम निम्नलिग्वित अशुद्धियों को शुद्ध करेले:—

१५ ६ लं लं लंग १६ ६ लं लंग लंग १६ १५ किंव किंव १६ १५ वासु वास् २१ ६ स्पष्ट स्पष्ट २१ ६ हें हैं १३ २ केंद्र	.	•			
५ ६ तंव तंव ११ ० प्रहेती त्यहंती ११ ० प्राप्ता भंगतः ० ११ मतन यवत्यम ० ० प्राप्ता प्राप्ता प्राप्ता ० १७ को प्राप्ता प्राप्ता केव १५ ६ तंव तंव १६ ६ तंव तंव १६ १५ त्व तंव १६ १५ तंव तंव १६ २० तंव तंव १६ तंव तंव तंव १६ तंव तंव तंव १० तंव तंव तंव १०	सफा	लाइन	ऋ <mark>श</mark> ुद्ध	गुद्ध रूप	
१० ६ देव हेव ११ २ भांधानः भांधानः भांधानः १० भांधानः प्रवास्त्रम प्रवास्त्रम १० को पार को नंगो के उप पार तेयाने वाले वि १५ के पार पार तेयाने वाले वि पार तेयाने वाले वि १५ ६ लच्च लच्य लच्य १६ ६ लच्च लच्य वाय वाय वाय वाय वाय वाय को को <td< th=""><th>8</th><th>६,११.१८</th><th>श्राश्रव</th><th>শ্বাশ্বৰ</th><th></th></td<>	8	६,११.१८	श्राश्रव	শ্ব াশ্বৰ	
११ त अहंती व्यहंती १३ १० मांधनः गाँगनः ११ मनन यचन यतियम यदायम १७ को पार को नग्गो के उर समान है पार तेयने वाले १५ ६ लच लच्य १६ ६ लच लच्य १६ १५ किंव धिवि १६ १५ वायु वायु २१ ६ स्पष्ट स्पष्ट २१ ६ को हैं	¥	8	त्रांबन	जीवन	
१३ १० भागना संगताः ११ मनन ययन यदिषम यदीयम १७ को पार वित्र की नरेगों के उर् समान हैं पार देखने वाले हैं १४ किंव किंव १६ १५ किंव किंव १६ १५ वायु वायु २१ ६ स्पष्ट स्पष्ट २१ ६ से हैं ३३ २ केंदि	? •	ક	दव	न्य	
११ मनन यवन पतियम यदीयम १७ की पार की नरेगी के उर समान है पार देखने वाले हैं १४ है ,) १६ ६ लं लंच लंड्य १६ १४ किंव किंव १६ १४ वासु वासु ६१ ६ स्पष्ट स्पष्ट २१ ६ हैं हैं १३ २ कीई कीई	११	?	श्रहेता	त्यहंती	
१७ की पार : की नरंगी के उर गमान हैं पार देखने वाले हैं । ।) १६ ६ लं लं लंडर १५ किंव किंव । । । । । । । । । । । । । । । । । । ।	4,3	9 2	र्माधनः	र्मागसः	
१७ की पार . की नरंगी के उर गमान हैं पार देखने वाले हैं १४ हैं .) १६ ६ लंक लंद्य १६ १४ किंव किंव १६ १४ वासु वास् २१ ६ स्पष्ट स्पष्ट २१ ६ हैं हैं ३३ २ केंद्र अभा अभाव		2.3	मनन	व ्य न	
समान है पार देखने बाले हैं १५ ६ .) १६ ६ लं लं लंडर १६ १५ किंव किंव १६ १५ वासु वासु २१ ६ स्पष्ट स्पष्ट २१ ६ हैं हैं ३३ २ केंद्र प्रभा प्रभाव	••	1.	यद्याम	यनीय म	
१५ ६ लं लं लंग १६ ६ लं लंग लंग १६ १५ किंव किंव १६ १५ वासु वास् २१ ६ स्पष्ट स्पष्ट २१ ६ हें हैं १३ २ केंद्र	;-	१७ का	पार	की नम्मों के उस	
१६ ६ लंब लंब्य १६ १५ किव किव १६ १५ वासु वास् १६ १५ वासु वास् २१ ६ स्पष्ट स्पष्ट २२ ६ हें हैं १३ २ केर्ड		र[मा	ન ટેં	पार देख <mark>ने वा</mark> ले हैं	
१६ १५ किव किव १६ १५ वायु वायु ६१ ६ स्पष्ट स्पष्ट २२ ६ हें हैं ६३ २ केई 85 १८ प्रभा प्रभाव	o y	ć)	
१६ १५ वायु वायु २१ ६ स्पष्ट स्पष्ट २२ ६ हैं हैं ३३ २ कोई कीई 85 १ ≅ प्रभा प्रभाव	9 &	É	लच	लंडय	
२१ ६ स्पष्ट स्पष्ट २२ ६ हें हैं ३३ २ कोई कीई 85 १ ≅ प्रभा प्रभाव	१६	१४	ां क्रीव	किवि	
२२ है हैं ३३ २ कोई कीई 85 १ ळ प्रभा प्रभाव	48	8,4	वायु	वाय्	
ं३ २ कोई कीई 8७ १७ प्रभा प्रभाव	٦, ٩	૬	स्पच्छ	स्पष्ट	
४६ १ ८ प्रभा प्रभाव	হ্	Ę	S. The	हैं	
	: ३	၁	क्ष	÷ř.	
	85		স্মা	प्रभाव	
४५ ३ खोन हाने	82	₹	ग्दोन	स्याने	
धार ३ जोज जस्ते	U) ~	3	ज्ञो ज	राष ्ठे	

जैन धर्म और मृति पूजा

जैन धर्मानुसार इस विश्व की रचना में दो प्रकार की घस्तुत्रों का भाग है। एक चेतना लच्चा से युक्त चेतन पदार्थ अर्थात् जीव (आत्मा) है और दूसरा जीव से विरुद्ध लच्च वाला अचेतन पदार्थ अर्थात् अजीव है। अजीव अनंत हैं अचेतन परमारणुओं का समुदाय है। यह विश्व इन दोनों ही अचेतन परमारणुओं का समुदाय है। यह विश्व इन दोनों ही अपनेत परमारणुओं का फल स्वरूप है। अनंत काल से यह जीव अपने ही परिणामों के द्वारा आकर्षित किये हुये अचेतन पदार्थ के परमारणुओं से लिप्त हुआ इस संसार में तरह २ के सुख पदार्थ के परमारणुओं से लिप्त हुआ इस संसार में तरह २ के सुख दुःख का अनुभव कर रहा है। इसका कारण यह है कि ज्ञान, सुख सूदनता आदि गुण ही इस जीव का स्वभाव है

^{*} यद्यपि भिन्न २ मतवालों ने दृष्टि भेद के कारल इन जीव श्रीर श्रजीव परार्थों के भेद तथा श्रीर लद्मल भिन्न २ प्रकार के माने हैं किन्तु इस स्थल पर उनमें गहरे धुसने की श्रावश्यकता न होने से केवल इतना ही बता देना पर्याप्त है कि इन्हीं जीव श्रीर श्रजीब पदार्थों को सांख्य इश्वेन में पुरुष श्रीर शकृति कहा है श्रीर वेदान्त ने ब्रह्म श्रीर माया नाम से ज्यापहर किया है।

श्रीर श्रचेतन पदार्थ के साथ संयोग होने से इसके वास्तविक स्वरूप पर परदा पड़ा हुआ है और इसकी विभाव परिएति हे रही है अर्थान अनंत ज्ञान के स्थान में कुज्ञान और अल्प ज्ञान, अनंत अर्तान्द्रिय सुख के स्थान में चिश्विक सुख और दु:ख तथा सूच्मता के स्थान में स्थूलता ऋाई हुई है। ये शर्रारादि उपाधियां भी इन ऋचेतन (कर्म) परमागुद्धों के ही कार्य हैं। इन्हीं कर्म परमागुत्रों ने इसकी समस्त शक्तियां की आच्छादित करके इसको मोह जाल में इतना फँसा रक्खा है कि उन शक्तियों का विकास हाना नो दृर रहा उनका स्मरण तक भी इसकी नहीं हो पाता। इन संसारी जीवीं में से जो जीव श्रपनी श्रात्मनिधि की सुधि पाकर और श्रविरत प्रयक्ष करके इस अचेतन पदार्थ (कर्म) के आवरण को हट। देते हैं वे 'मुक्त' कहलाते हैं। उस समय उनका श्रनेत ज्ञान मय त्रसर्ला स्वरूप प्रगट हो जाता है श्रीर उनकी सम्पूर्ण स्वाभाविक , शक्तियां पूर्ण रूप से विकसित हो जाती हैं नवा स्वभाव से ही सूस्म होने से ऊर्ध्वगामा होने के कारण इस प्रकार कर्ममुक हो जाने पर लोक के सब से ऊंचे भाग में जा निवास करते हैं।

जीव की इस परम विशुद्ध अवस्था का नाम ही परमात्मा है। इसी के भिन्न २ गुणों और अवस्थाओं की अपेका से अर्हत, जिनेन्द्र, सिद्ध, सर्वज्ञ, वीतराग, शुद्ध, बुद्ध, परंज्योति, निरंजन, निर्विकार आदि भिन्न २ नाम हैं। वह परमात्मा परम बीतरागी और शांत स्वरूप है, उसको किसी से राग या डेश नहीं है, किसी की स्तुति, भिन्न और पृजा से वह प्रसन्न नहीं होता और न किसी की निन्दा से अप्रसन्न । उसको न तो धनवान, विद्वान और उचवर्ण के लोगों से ही प्रेस है और न निर्धन, मूर्ख और नीच जाति के लोगों से, घृशा ।

सर्वज्ञता (केंबल ज्ञात) की प्राप्ति होने पर जब तक देह का सम्बन्ध बना रहता है तब तक उनको 'अर्हत' या जीवन मुक्त' कहते हैं और जब देह का सम्बन्ध भी जूट जाता है तब उनको 'सिद्ध' नाम से भूषिन किया जाता है।

वे परमात्मा अहँतावस्था में सब जीवों को उनकी आत्मा का स्वरूप और उसकी प्राप्ति का उपाय बनाते हैं कि किसप्रकार ये जीव कमीं के शिकंजे में फँसे हुए हैं इनसे छुटकारा पाने के उपाय क्या २ हैं तथा दुःख से निम्नृत्ति और सुख की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है *

^{*} जिस प्रकार जीवका कमों (श्रजीव) के साथ सम्बन्ध होता है श्रीर जिस प्रकार उनसे बुटकारा मिलता है उसका वैश्वानिक वर्णन जैन धर्म इस प्रकार करता है । मन, यचन, काय (शरीर) की चंचलता के निमित्त से श्वात्मा की स्वामाविक शाक्ति का हास होता है श्रीर उस समय उसकी जैसी भी

रोप आत्माएं (उपरोक्त अवस्था के प्राप्त न होने तक) मोर बनों से बुक्त पर्वतों से वेष्टित स्थान में होकर गुजरने वाले उस यात्री के समान अमण करती रहती हैं जो अंधकार युक्त निशा में अपने रास्ते का ठीक २ पता न लगने से पथ

किया होती है उसी प्रकार के कर्म (अवेतन) परमाख उसकी तरफ आकर्षित होते हैं इसको 'आश्रध 'कहते हैं। तथा वे कर्म कपाय (क्रोध , मान, माया, लोभ रूपी भावों) के तीव या मंद होने की अपेक्षा से कम या अधिक समय के लिये श्रातमा को बांध लेते हैं, इसको 'बंध' कहते हैं। इस पंधन को तोड़ने के हो उपाय हैं (१) संबर और (२) निर्जरा। 'संबर' से नवीन कर्मी का श्राभव नहीं हो पाता है श्रीर 'निर्जरा' से पूर्व में सम्बन्ध को प्राप्त कर्मी से बुटकारा मिल जाता है। इसी बात की हिंदू धर्म वाले कह सकत हैं कि संसार प्रवासी (आश्रव) को वैराग्य द्वारा रोक कर सम्यासादि धारण करने से कमीं का चय हो जाता है। श्रात्मा के स्वरूप के चितवन तथा चारित्र पालन आदि से 'संवर' होता है। बान आराधना और ध्यात आदि श्रंतरंग श्रीर बाह्य उपस्या से कर्मी की निर्जरा होती है भीर जब जीव कमों (ध्रचेतन पदार्थ के ऋतरण) से पूर्ण कप से झुटकारा पा जाता है तब उस अवस्था को उसकी 'मोक्त' कहते हैं। कर्म (अचेतन) परमाणु आठ प्रकार के होते हैं (१ क्रानावरणी, जिनने श्रात्मा के क्रान गुण को दँक रक्ता है (२) दर्शनावरणी, जो आत्मा के दर्शन गुण को दंक दें (३) वेदनीय, जो सांसारिक सुख दुःख की सामग्री जोड़कर

भ्रष्ट होकर अपने लच्य स्थान से बहुत दूर जा पहुँचा है श्रीर तरह २ की घोर यातनाश्रों को भोगता फिर रहा है। अवश्य ही एसी अवस्था में जब कि सिंह व्याघ्र आदि हिंसक जन्त चारां श्रोर मुँह फैलाये फिर रहे हैं श्रीर उसका जिवन भी संशययक दिखाई देरहा है उस समय उस मनुष्य के लिये उस पथप्रदर्शक से बढकर श्रद्धास्पद और आदरणीय श्रीर कीन हो सकता है जो उसको सर्व प्रकार के दु:खां मे बचने का उपाय बताकर उसके लक्यस्थान तक पहुंचने का ठीक २ मार्ग बतादे। ठीक ऐसी ही अवस्था हम संसारी जीवों की भी है। जिन महान आत्माओं ने क्रोध, मान, माया, लोभ रूपी कपायों को वश में करके और अपनी इन्द्रियों का दमन करके, अपनी आत्मा से भिन्न समस्त वस्तुत्रों से ममत्व (राग द्वेप) त्याग दिया है, जो मर्व प्रकार की कुथा, तृषा आदि वेदनाओं और संकड़ों प्रकार के उपसर्गों को सहन करते हुए भी श्रपने कर्तव्य मार्ग से

सुक दुः क का भोग करावें। ४) मोहनीय, जो आतमा के श्रद्धान और चारित्र (शांति) को विगाइं ४) आयु, जो किसी शरीर में आत्मा को रोक रक्खें (६) नाम, जो शरीर की श्रद्धी बुरी रचना करें (७) गोत्र, जो ऊँच नीच पद प्राप्त करावें और (८) अंतराय, जो आत्मा के वीर्य या लाभ भोग श्रादि में विघ्न करें।

विचितित नहीं हुए, जिनने कर्मावरण में पैदा हुए श्रज्ञान श्रंथकार की दूर करके अपनी श्रसली (शुद्ध) अवस्था प्राप्त करली है और हम असहाय श्रवस्था में ह्रबंत हुए प्राणियों को सके सुख का मार्ग बताकर हमारा श्रत्यंत उपकार किया है तथा जिनने हमारे सामने श्रपना श्रादर्श रखकर हमारे रास्ते को सुगम बनादिया है ऐसी महान श्रात्माओं के प्रति हमारे हृद्यों में यदि श्रादर और प्रेम के माव नहीं हैं, यदि हमारे हृद्य उनकी मिक में सावित नहीं होरहे हैं और यदि उनको अपना श्रादर्श श्रीर पथप्रदर्शक मानकर उनके गुणों के चितवन में हमारा श्रानुराग नहीं है तो निस्संदेह कहना पड़ेगा कि स्गातृष्णा में पड़े हुए हम सुख की प्राप्ति के मार्ग से श्रमी बहुत दूर चकर लगा रहे हैं।

अहंतों की भी ऐसी ही महान आत्माओं में गिनती हैं और उनके द्वारा जगत का जो असीम उपकार होता है उसके बदले में हम उनके प्रति जितना आदर और कतझता प्रदार्शित करें वह सबकुछ तुच्छ हैं। जो लोग दूसरों के किये हुए उपकार को भुला देते हैं वे कृतन्नी कहलाते हैं और वे कभी भी उन्नति नहीं कर सकते, इसलिये ऐसी महान आत्माओं के प्रति आदर और कृतझता प्रदर्शित करना हमारा परम कर्तव्य हैं। हमको यह भी ज्ञान है कि हमारा ध्येय आत्मखरूप की प्राप्ति है और वह एकाप्रता के साथ आत्मा के स्वाभाविक गुणों के चितवन * से हो सकती है किन्तु अधिकांश जीव

* मनमें एक ऐसी ज़बरदस्त शक्ति है कि इसकी वश में बहुत ही मश्किल से कर पांत हैं और जिसने मन को जीत लिया है, समभ लीजिये वह सब कुछ करने को समर्थ है। मन का वश में करने की साधना एकाग्रता पूर्वक चितवन के द्वारा उस अपने ध्येय की तरफ लगा कर की जाती है। एकाग्रता पूर्वक चितवन का मन पर ऐसा प्रभाव पड़ता है कि कालांतर में ध्याता ही ध्येय हो जाता है अर्थात वह जैला बनना चाहता है वैसा ही वन जाता है। श्रतः यह कथन ठीक है कि मनुष्य के भाग्य का निर्माणकर्ता यह स्वयं ही है। वह निरंतर, जैसा मन में विचार करता हैं। जैसी भावनायें उसके मन में उत्पन्न होती हैं वैसा ही यह स्वयं भी हो जाता है। वह अपन को और अपने सुख दुःख को जब तक जीवन की बाह्य श्रवस्थाओं श्रौर दूसरे लोगों की रूपा पर श्रवलम्बित समभता रहता है तभी तक दुखी रहता है और जब यह अनुभव करने लग जाता है कि में ब्रात्मा हैं, स्वयं अनंत शक्तिका भंडार है , ब्रमर हं, दढ़ निश्चय के द्वारा प्रत्येक कार्यकों कर सकताहं, प्रस्वय जैसा अपने आपकी समभता रहता और करता रहता है वैसा ही वन जाता हूं, में किसी के आधीन नहींहूं, किन्तु आत्मश्रद्धा और तीव रच्छा के द्वारा श्रसंभव को भी संभव कर दिखा सकता

इस संसार की विषय वासनाओं में इतने फँसे हुए हैं कि
गुणी के आश्रय के बिना गुणका उनके बिचार तक में आना
आसंभव है। ऐसी अवस्था में चितवन तो हो ही कैसे सकता
है, क्योंकि गुण गुणी वस्तु के आश्रय के बिना संसार में कहीं
भी नहीं पाया जाता। जैसे उष्णता एक गुण है किन्तु हमको
उसका झान उष्ण वस्तुओं के द्वारा ही होसकता है, वस्तुओं से
अलहदा उसको हम कहीं भी नहीं पासकते तथा जहां हम
उस गुणी वस्तु को देखते या स्मरण करते हैं कि उसके गुण

हं, तब संशय, भय आदि सब जाते रहते हें और उस की आत्मशक्तियाँ विकसित होने लगजाती हैं। आप अपने आपको जबतक दुखी समअकर दुःख के विचारों में ही लगे रहेंगे तबतक दुःख से बचने के सेंकड़ों उपाय करने पर भी दुखी ही बने रहेंगे और जब दुःख का विचार मनमें से निकाल कर टढ़ संकल्प के साथ हर जगह सुख ही सुख में अपने आप को देखेंगे तो आपकी दशामें परिवर्तन हो जायगा और आपको अवश्य सुख मिलेगा। इस में कोई शक नहीं कि यदि आपकी इच्छा अनुचित और घृणित है और आप महति के प्रतिकृत जारहे हैं तो आप का प्रयास विफल होने की पूर्ण संभावना है परन्तु जबतक आप की इच्छा शुद्ध, उचित और प्रकृति के अनुकृत है आप अपने प्रत्येक इच्छित कार्य की सिद्धि एकात्रता पूर्वक चितवन के द्वारा करसकते हैं।

का भी हमे तत्काल ही स्मरण होजाना है। इससे यह श्राशय निकलता है कि अहँत आदि ऐसी महान आत्माएँ हैं जिनमें मात्मा के स्वाभाविक गुगा पूर्ण रूप से विकसित होगवेहें श्रीर उनके गुणों का ध्यान तथा उनके अलौकिक चरित्र का विचार हमें भी अपनी आत्मा और उसके स्वाभाविक गुणों की याद दिलाता है। इसीलिये वे हमारे श्रादर्श हैं श्रीर आरमीय गुर्गों के पूर्ण विकास के लिये उसी आदर्श को मामन राय कर हम अपने चरित्र का गठन करते हैं। किन्तु अपने आदर्श पुरुष के गुणों में भक्ति और अनुराग का होना स्वाभाविक श्रीर त्रावश्यक है क्योंकि विना श्रतराग के कभा किमी गुण की प्राप्ति हो ही नहीं सकती । यह सर्वत्र देखा जाता है कि जो मनुष्य जिस गुए से प्रेम करता है वह उस गुणवाले का भी अवश्य प्रेमपूर्वक आदर सत्कार करता है। अ। इर सत्कार रूप इस प्रवृत्ति का नाम ही पूजा और उपासना है। हमारे आदर्श होने से ही अहैतों में हमारी भक्ति है और वहीं हम में उनके प्रति ऋाद्र सत्कार के भाव पैदा करती है। किन्तु क्या इम उपासना का उद्देश्य बह है कि वे इस उपासना क इन्छक हैं और हमसे प्रमन्न होकर हमारी इन्छाओं की पूर्ण

करेंगे ? नहीं, वे परम वीतरागी श्रीर शांत स्वरूप हैं। उन्होंने काम, क्रोध ऋादि तथा सर्वप्रकार की इच्छाओं को नारा करीट्या है, वे न तो स्तुति से ही प्रमन्न होते हैं और न निन्दा से ही अप्रसन्न । अतएव यह बात अरुखी तरह हृदय में जमा लेनी चाहिय कि जैनधमानुसार उपासना का मूल उद्देश्य हमार उपास्य दवे अर्हता के गुणा की प्राप्ति है अथवा दुसर शन्दों में, उनके (आत्मा के स्वाभाविक) गुर्गों में हमारे अनु-गग को हद बनाने के लिये ही उनकी उपासना कीजानी है ताकि बारबार एकान्नता पूर्वक चितवन करने से हममें भी व ही गुण प्रकट हं:जावें। जिस प्रकार एक यात्री के लिय अपन उद्देश्य स्थान और उस तक पहुंचन के मार्ग का. जब तक वह बहां न पहुंच जांचे. ध्यान में रखना आवश्यक हूं और वहां पहुंचने पर बह यह चिंतवन नहीं करता कि मुक्ते अमुक स्थान पर पहुंचना है किन्तु यह समक्ष लेता है कि अब में उसी स्थान पर हूं, ठीक इसीप्रकार इस जीव के लिये भी अपने ध्येय और आदर्श पुरुषों के द्वारा बताएहुए मार्ग का ध्यान में रखना आवश्यक है तथा कम २ से ध्यान (चिनवन)के द्वारा उसकी तरफ अयसर होता हुआ वह अंत में उस पालेता है। उस समय चित्रधन की बिलकुल आवश्यकता नहीं होती और

सर्व प्रकार के बिकल्प भाव मिटकर ध्याना और ध्येय दोनों एकही रूप होजाते हैं।

इससे प्रकटहें कि अहंतांकी उपासनाका मूल उद्देश्य केवल यही है कि आत्माकी जिन स्वाभाविक शक्तियों को उन्होंने विकसित कर्गालयांहें वेही हममेंभी पूर्ण्रूपसे विकासको प्राप्तहोजांवें तत्वार्थ सूत्रमें कहा भी हैं:- मोचमार्गस्यनेतारं भेनारंकमभूशतां ज्ञातारं— विश्वतत्वानां वंदे तद्शुण लब्धये- अर्थात मोचमार्ग के नेता, कर्म कपी पर्वतों के तोड़ने वाले और संमार के तत्वों के जानने बाले अहेंतों की, उनके गुणोंकी प्राप्ति के लिये, वंदना करता है।

यगिप इस प्रकार की उपासना के द्वारा आत्मिक शिक्तयों का विकास होजान से परिसाम, कपसे लौकिक प्रयोजनों की भी सिद्धि होती अवश्य है किन्तु यह बात ध्यान में रखलीजिय कि जो लोग लौकिक प्रयोजनों की पूर्तिकेलिये, सांसारिक इच्छाओं को पूर्ण करने की रारज से, अहंतों की पूजाभिक करते हैं तथा तरह २ के प्रण और सौगन्ध लेने हैं, केसारियानाथजी, महावीरजी, शिखरजी, गिरनारजी आदिकी बोलारियां बोलतेहैं खार उनको आशा दिलातेहैं कि हमारे अमुक कार्य की सिद्धि हो जाने पर हम आपके दर्शन करने आवेग और अब चामरादि सुन्दर २ उपकरण चढ़ावेंगे: जो बीमारी और आईहुई दूसरी

श्रापानियों से छटकारा पान के लिये चौमटऋदि . कर्मदहन, तीनलोक आदि के मंडल मेडवा कर उन बीतराग मुर्तियों को रिश्वत देने का ढाँग रचते हैं और जो यह समभने हैं कि कषाय श्रीर मिध्यात्व की किंचितमात्र भी उनके म्बभाव में चाहे कमी न आवे तो भी केवल उनकी अहाँनों के प्रति भिक्त श्रीर पूजा ही उनके कर्मों की नष्ट कर देगी; वे लोग नाम मात्र के जैनी हैं रूढ़ा के पीटनेवाले हैं स्रोर मिश्यात्व के प्रभाष से जैनी बनने का ढोंग ग्चकर जैनधर्म की बदनाम करते हैं। ऐसी उपासना विलकुल व्यर्थ होती है और उसके द्वारा उपासना के असली उद्देश्य की प्राप्ति करोड़ों धर्पों में भी नहीं होसकती । सच्ची पूजा तो वहीं है जो हमारे आदशे-अहतों- के जैसे गुणों की प्राप्ति के उद्देश्य में की जाती हैं। बहुधा बहुत से लोग अंधश्रद्धावश ऐसा भी सममेत रहते हैं कि हमारे उपास्य देवों की भक्तिपूर्वक पूजा करने के कारण, उनके प्रसाद से हमेंभी उनके जैसे गुर्गा की प्राप्ति हो जायगी तथा इमारे कम भी कट जावेंगे किन्तु वास्तव में वात यह है कि उनके गुणों के अनुराग पूर्वक चिंतवन तथा ममता भाव मे ही, न कि उनके प्रसाद से,हमारी आत्मा पर ऐसा प्रभाव पड़ता है और हमारी श्रात्मिक शक्तियों क्रम २ से विकास की प्राप्त हो कर वे गुरा हममें भी प्रकट होजाते हैं।

जिसा हम पहले विचार करचुके हैं अहैत एक हिष्ट में तो हम भूल भटकों का अपने उपदेश के द्वारा अस्यंत उपकार करगये हैं और दूसरी हिष्ट से हमारे आदर्श हैं तथा ये ही दोनें। कारण हैं जिनकी यजह से जैनवर्भ उस श्रेली के महात्माओं की आपना और उपासना करने की आवश्यकता बनाना है।

श्रवःहम अपने प्रम्तुत विषय मृति पृजा पर आते हैं।

या विश्वंवद्वेद्यं जननजलनिधःभाग्ननः पारहश्या । गोर्वापर्याचिरुद्धंमचनमनुषमंनिष्कलंकम् यद्यिम्॥ तं वंदे साधुवंदयं सकलगुणनिधि ध्यस्तदे।पहिशन्तम्। युद्धं वा वर्धमानं शतदलनिलयं केशवं वा शिवं वा॥

श्रीमन भट्ट श्रकलंकंदव के उपराक्त पश्चमें शकट है कि जैन श्रमीनुभार वे सब महापुरुष, जो श्रपेन श्रमीन्द्रिय झान के बलमें नीनकाल सम्बंधी समस्त बातों को जानते हैं, जो संसार क्षी समुद्र को पार करने के लिए नौका के समान हैं, जिनका उपदेश निष्कलंक है श्रीर वस्तु स्वभाव के विरुद्ध नहीं है तथा जो सर्व गुलांकी खान श्रीर सर्व दोषों से रहित हैं, बाहे उनका नाम बुद्ध हो, महाबीर हो, विष्णु हो, केशब हो या शिव हो श्रथवा कोई श्रीर नाम इसा मोहरमद वर्षण हा, हमारे पूजनीयही हैं।

क्ष जैन धर्म मिश्या पत्तपान करना भी नहीं सिम्धाना। वह कहना है:-

अर्हन सर्वत्र सदा विद्यसान नहीं रहेने इसीलये परमात्मा के गुणों की स्मृति दिलाने के लिये उनकी अर्हन अवस्था की मृतिथा बनाई जाती हैं। वे मृतियाँ उनके वीतरागता, ध्यान मुद्रा के श्रीर शांतना आदि गुणों का प्रतिबिस्त्र होतीहें और उसी उद्देश्य की पृणे करती हैं। ऐसी मृतियों को केत्रल पत्थर की बनाकर जो उनकी निद्रा करने हैं वे लीग वास्तव में जैनधर्म के तत्वों से प्रिचित नहीं हैं। जिस प्रकार किसी कमरे में लगे हुये, महान पुरुषों के, चित्रों को देखकर उस कमरे में बैठने वालों के भन भी, (यदि वे उनकी जानते हैं और उनके गुणों को आदर की हिए से देखते हैं) समय २ पर जब २ भी

^{*} ध्यान के समय शरीर की स्थिति कैसी होनी चाहिये. इसके लिये श्रासन का विधान कियागया है। जवनक श्रासन मज़बृत नहोगा तवनक मनभी ध्यान में स्थिर नरहस्केगा श्रासन की दहना संगरमी, सरदो वर्षा, डांस, मच्छर श्रादि की तरह २ की पीड़ा होनेपर भी मन चलायमान नहीं होता। ध्यान करने के श्रासन बहुतसे हैं जिनमें पद्मासन बहुत सुगम है। जैनियों के मन्दिरों में जो पद्मासन मृतियाँ होती हैं उन्हें देखकर हम जान सकते हैं कि इस श्रासन को किस प्रकार लगाना चाहिये इस श्रासन में शरीर को विलकुल सीधा रखना चाहिये और किसीभी श्रंग को तनाहुश्रा न रखकर सम्पूण शरीर को विलकुल शिथिल कर देना चाहिये।

उनकी उन चित्रों पर हिष्ट जापड़ती है उन्हीं महापुरुषों के गुणों के स्मरण में लगजाते हैं और उनके द्वारा उनके चरित्र का भी सुबार होने लग जाता है; ठीक उमीप्रकार ऋहैतें की मृतियां भी प्रथम तो बनावट में ही निर्वथ, परम बीतरागता स्वक और शांतम्बरूप होती हैं और उन्हें देखने मात्र स अत्यन्त शांति मिलती तथा आत्मत्यरूप की स्पृति होती है, इसके अलावा उन महान आत्माओं के गुणों की याद हिला कर (जिनके समरण के लिये ही चित्र आहि की तरह वे भी बनाई गई हैं, हमार बिचारों को स्थारनी तथा हमार चरित्र को भी मुन्दर सांच में ढालरेती हैं। हम फीरन विचारने लग जाते हैं कि हे आत्मन निरा म्बम्प ता यह है ! इस भूलकर तु संसार के मायाजाल में आँ। कपायों के फेरे में क्यों फसा हुआ है इत्यादि । इसप्रकार मनुष्य आत्मस्थार के मार्ग पर बदने लगजान हैं और उसका श्रेय निमित्त कारण होने से हम मृतियों की देने हैं। किन्तु फिर्मा बहुतमें मनुष्य ऐसे होने हैं जिन पर उन बातराग मूर्तियों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, किन्तु इसमें उन मृतियों का कोई दोप नहीं है। जिस प्रकार नदी पार जाने का इच्छक पुरुष यदि किनार पर नाव मौजूद होते हुये भी उस में न बैठकर वैसेही अपने प्राप्त गैवा देता हैं किन्तु इससे उस नाव की उपवर्णणना में कोई फर्क नहीं

आता उसीप्रकार यांद उन मूर्तियों से भी कोई लाभ नहीं उठाता तो उससे उनकी उपयोगिना कम नहीं होजाती। उन मृतियों को जो प्रणामादिक कियाजाना है वह वास्तव में आत्मा के स्वामाविक गुणो को (जो उन अईन्नों ने प्राप्त कर लिये थे) ही प्रणामादिक करना है, धातु पापाण को नहीं क्योंकि केवल उन गुमों को ही लक्ष करके उन मृतियों की स्थापना की गई है।

श्रव हमेगह विचार करना है कि उपासना मूर्त पदार्थ- जैसे मूर्ति- के अवलम्बन के बिना भी होसकती है या नहीं और याद होसकती है तो किसप्रकार ? निस्मेदेह मूर्त वस्तु के अवलम्बन के बिना भी उपासना होसकती है और वही उत्कृष्ट ध्यान कहलाता है जिसकी हम श्रीमन नेमिचंद्र मेह्यान्तिक चक्रवर्ति के ' द्रव्यसंप्रह की निम्नालिंग्वन प्राकृत गाथा से प्रकट कर सकते हैं:—

मानिहुह् माजंपह् मानितह् क्रिंव जेग्। हाइांथरे। । श्रापा अप्पन्मि रश्रो इग्रामेव परं हवे भागं।।

इसका आशय यह है कि न तो कोई उपाय करो, न कुछ कही और न किसी का जितवन करो, एक नाय आत्मा का अस्मा में लीन होना ही उत्कृष्ट ध्यान है। इनसे स्पष्ट है कि उत्कृष्ट ध्यान वह है जिसमें न ती अरहतों के (आत्माके) गुणों का चितवन ही अपेचित होताह और न यम नियमादि रूप कियात्रों का त्राचरण ही किन्तु कैवल त्रात्मा को त्रात्मा में लीन करदेन की आवश्यकता होती है। इस ध्यान में किसीभी प्रकार के मूर्त आधार (अवलम्बन) की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि यहां शब्द द्वारा चितवन का भी श्रीस्तत्व नहीं रहता केवल परमात्मस्वरूप मय भाव ही पाय जात हैं। एसा ध्यान निर्विकल्प ध्यान ही होसकता है और वह उनना कठिन है कि हम मांमारिक विषय वामनात्रों में लगेहर मन्देंये ना क्या , अब्हे २ मूनि भी विना बहुत बहेहुए अभ्यास के नहीं। करसकत । इसालिये इस ध्यान के करने की सामध्य न रखने वाल मनुष्यों के लिये किसी श्रालम्यन की श्रावश्यकता होती है और वह श्रालुम्बन वे शब्द हैं जो श्रात्मा म्बाभाविक गुणों को प्रकट करनेवाल भावों के बोतक होते हैं | किन्तु उन मन्ष्यों के लिये जो मांमारिक विषय वासनाओं में लिप्त होने से आत्मा के स्वामाविक गुर्गों के बोनक शब्दों के भाव को भी पहण करने में असमर्थ होते हैं एक और अब-लंबनकी आवश्यकता होती है जिसकी मृति या चित्र कहंनहै।

क्रपर नीन प्रकार के ध्यान बताये गये हैं। उनमें स पहला उत्कृष्ट ध्यान तो जहां कल्पना का भी अस्तित्व नहीं होता. कवल निर्विकल्प समाधि अवस्था की प्राप्तहुए मुनियों के द्वारा ही लुगाया जामकना है अनुष्व वह . उसमें नीचे दस्जे के माध् और गृहस्थों के लिये. निरुपयोगी है और उस अवस्था के प्राप्त होने नक हमारे लिये उपासना के केवल हो ही मावन रहजाते हैं :- (१) परमात्मा या जीवनमुक्त परमात्मा (अर्हन्ती) के स्थामाविक गुणी के चीतक शब्दी का अवलस्वन लकर (२ : जीवनसुक परमात्मा (ऋहेन्तों) के स्वामाविक गुगी के बातक शब्दों प्यार उन्हीं की तदाकार मतियां का व्यवलंबन लेकर । ये दानो प्रकार के ध्यान के प्रवलस्वन , मन्त मीर मृति , मृतीक ही हैं इसीलिय हम कहमकते हैं कि (विविकत्य ध्यान के अलावा) संसार की कोई भी उपासना विना मन पदार्थ के अवलम्बन के हो ही नहीं सकती, बाहे वह ं मूर्त पदार्थ शब्द की तरह सुद्धम हो या पापाण की मृतियों श्रीर चित्र श्रादिकी तरह स्थूल। शब्द मूर्तीक पदार्थ है यह बात जैन धर्म में सिद्ध है 🦠 त्रीर त्राधुनिक विज्ञान ने भी Wireless telegraphy wir Gramophone wife &

^{*} तैन्धर्मानुसार संसार की उत्पत्ति केवल दे। प्रकार की वस्तुओं से ही है (१) चनन (१) अचनन । अजनन पदार्थ मूर्तीक

अन्वयम के द्वारा यह अच्छी तरह प्रमामित करदिया है कि शब्द मृतीक पदार्थी में उत्पन्न होते हैं और मृतीक पदार्थी में ही रोकेंजांत हैं हमांलेंगे स्वयं सी एक प्रकार की सृद्ध मृतियों हैं।

मनुष्य आध्यात्मिक रन्नति के मार्ग में ज्यों ज्यों आगे बढ़ता तुआ चलाजाना है त्यों त्यों उसके ध्यान का अवलंबन मृतं आधार भी स्थूल से सूद्ध की तरफ क्रमशः बढ़ता तुआ चला जाता है और खंत में मृत् आधार के ऑन्तत्व का बिलकुल ही लोप होजाता है। यहां कारण है कि मृतियों के श्रवलस्वन के विना आत्मचित्वन में असमर्थ मनुष्यों की अहंतों की

है और नितन श्रम्नीक। शब्दों की उत्पान श्रन्तन पहार्थसेहं और इमीकारण वह मृतीक होते हैं। जिस प्रकार पानी में पत्थर फेंकन से उसमें हलचल मन जाती है और वहाँ से लहरें पैदाहों कर पानी में चारों और फेल जाती हैं उसी प्रकार बायु में भी मुँह के द्वारा या किसी और तरीके से श्राधात पहुँ-नित पर एक प्रकार की लहरें पैदा होकर चायुमें डल में चारों और फेल जाती हैं जिनको हम कानों के द्वारा ग्रहण करते हैं और श्रपन कार्यों के लियं मुक्करिंग कियं हुए संकर्तों के श्रम्भार उनसे मतलब निकाल लेते हैं।

मृतियों की श्रावश्यकर्ता होती है श्रीर जो मनुष्य इतनी इन्नति करचके हैं कि बिना मर्तियों के अवलस्त्रन के गी केवल शब्दों की सहायना में ही उनके गुणों का चिनवन (ध्यान) कर सकते हैं उनके लिये अर्हन्तें की उन तदाकार मृतियों का अवलम्बन आनिवार्य नहीं होता। अवलम्बन के मुद्दम श्रीर स्थल होने की ऋषेचा मे ही केवल शब्दों द्वारा होनेवाली उपामना मृतियों या चित्रों द्वारा होनेवाली उपामना की अपेका, फूँचे दरजे की मानी जाती है क्योंकि बहा म-तुच्य आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग में इसरी की अपना ऊँची भीड़ी पर होता है। किन्तु मृतियां तथा चित्रों के द्वारा होने वाली उपामना को नीची श्रेगी की ममसकर हम लोग उसे त्याग नहीं सकते क्योंकि उसी के सहार हमें उपरकी सीढी पर पहुंचना है। जो मनुष्य संसार के माया जाल में अन्यन्त फॅमेहूए हैं और जिनके चिन इतने चंचल हैं. कि केवल शब्दा द्वारा परमात्मा के गुणां का बिना उनकी जीवन्मुक (श्रर्हन्त) अवस्था के चित्र और मृतियों की महायता के ध्यान करने में श्रसमर्थ हैं, उनके लिये उन बीतराग- मृर्तियों श्रथवा वित्रों-की अत्यन्त श्रावश्यकता है। जिस प्रकार 'सर्प' इस शब्द के कानों में सुनते ही या अजर रूप में नेत्रों के सामने आते

ही हमें ' सर्प ' नामके एक विचित्र जहरीले जन्त का बोध होता है, किन्छ बह बोध सर्प की तदाकार मित्र के देखने पर उसमे कही श्राधिक होता है। ठीक इसीप्रकार, पर्मात्मस्वरूप के बीधक शब्दों के द्वारा परमात्मा का जो बीध हमकी हाता है वह उनकी ऋहैन्तावस्था की तदाकार मृतियों के देखने पर और भी श्रधिक म्पष्ट होताहै। इमीलिय श्राजकल के विद्वान शिचा-लयों में वालकों को Direct method के अनुसार चित्रों श्रीर मृतियों के द्वारा शिक्षा देना श्रिधिक पसंद करने हैं | वे इस बात को अच्छी तरह समभते हैं कि किसी भी वस्तु- उदाहरण् के लिये, वारहमिंगा-की कवल शब्दों में गुए, आकार श्रीर वनावट इत्यादि कुल विशेषनाएं बतादेने पर जो प्रभाव उमका बालकों की समस पर पड सकता है उमकी अपना कितना है। गुगा अधिक प्रभाव उसके चित्र या तटाकारमूर्ति को दिग्वाकर वे सब बातें शब्दों द्वारा समस्राने पर पड़ता है। संसार में सदा से अल्प विचारशांक वाले प्रत्यों की ही संख्या अधिक रही है इसीलिए जैनाचार्यों ने भी उपासना के निये हमोर आदरी, अर्हतों की नदाकार मूर्तियों की आवश्यकता पुर अधिक जोर दिया है। हम सब परमात्मा, अल्लाह, जिल्ली, इंश्वर, ॐ आदि का उच्चारण करते हैं, क्रॉस, ॰ आदि चिन्हों

का धर्म के नाम पर प्रयोग करते हैं, श्रपन २ श्रादर्श पुरुषों के नित्र धर्मस्थानी श्रीर मकानी में लटकान हैं और उनके जन्म और मरुश के पाँचल दिनों के अनिवर्ष उत्सव करते हैं, किन्तु इन सब कार्यों का उद्देश्य मिवाय इसके श्रीर कुछ नहीं होसकता कि ये मव कार्य परमात्मा की श्रीर उन महा पुरुषों की स्पृति दिलानेवाले हैं। जैनियों के मंदिरों में स्थापित की हुई श्रहेतों की मृतियों भी परमात्मा की ही स्पृति दिलाने वाली हैं श्रीर इसलिये, जो लोग उनकी उपासना की निद्रा करने हैं. वे वास्तव में जैनधर्म के सिद्धान्तों से श्रनभिज्ञ हैं।

किन्तु हम में पृद्धा जामकता है: क्योंजी ! यदि जैन धर्म की मृतिपृजा टीक विभी ही श्राटर्श उपासना है कि जिस की प्रशंसा करने में तुमने इनने सपे रंग डाले हैं नो क्यों श्राज कल तुम (जैनी) हजारों रुपयों के चावल. यादाम श्रीर केशर बदाकर उन मृतियों को प्रसन्न करने की काशिश करने गृहते हो, क्यों उनकी सुख दुःख की देनेवाली समक्त कर अपने दुःख के निवारण के लिये तरह २ की स्तुतिएं श्रीर पूजाएं करने हो श्रीर यदि तुम्हें खुद को फुरसत नहीं मिलती है तो नोकरों के द्वारा उनकी सेवा पृजा क्यों कराते हो ! निस्संदेह, इन सब प्रश्नों का उत्तर देना जकारी है श्रीर जब तक हम इनका समा—

धान न करदें नवनक हम अपनी मूर्तिपूजा की प्रशंसा में नाहे कितना ही गग अलापें किन्तु उसका दूसरों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता । ऋन्य धर्मावलंबी ही क्या, बहुत से जैनी भी मुर्तिपूजा के हमारे इस प्रचलित ढंग की अर्थ तथा समय का दुरुपयांग करनेवाला समभने लगगये हैं श्रीर इसके परिणामस्त्ररूप श्राज दिसम्बर् जैनिया में सारत पंथी और श्वेनास्वर जैनियों में स्थानकवानी ये हो पंथ मृति पजा के योग विरोधी होए में आरहे हैं। इस विरोध का कारण भं। यांद्र हम निष्यच भाव से विचार करें तो हमें मालम है। सकता है और बहु यही कि हमारी मुसिपुजा चात्रकल जान लच्य में भूष्ट और आदर्श में ज्यून होकर कारी बुनपरम्ती रहगई है, उसरी सुखा भावहीन किया कांड फेला हुआ है और लाखें रुपया पूजा और प्रतिष्ठा के नाम म प्रतिवर्ष यर्च करने और वहत में आडम्बर करने पर भी सुधार कुछ नहीं होपाना किन्तु समाज में तरह २ के अनाचारी की ही बृद्धि होती जारही है। एसी परिस्थिति में हम (जैनी) स्वयं तो उद्देश्य में अन्यंन गिर्ग हुई मुनिपूजा करने रहें और दूसरे कोगों की बुगई फरने के लिये ज्यादर्श मृतिवृज्ञा का सम अलॉप ! क्या इसमें बुद्धिमानी हैं ?

उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर में बहुधा हमार्ग (जैनियों की) तरफ से कहाजाता है:-

१. जैन शासों में पृजा दो प्रकार की कही गई है-एक इन्यपृजा और दूसरी भावपूजा। जल, चंदन आदि द्रव्यों का आश्रय लेकर भेट चढ़ाना द्रव्यपूजा है और गुणों का विचारना भावपूजा है।

गृहम्थ्री के मन का द्रव्यपूजा के द्वार। भावपूजा में आठ द्रव्यी का आश्रय लेकर जगाना मुगम होता है। इसीिस्थे आठ द्रव्यी के द्वारा खाठ प्रकार की भावनाएं करनी चाहिए:--

- ४. जल-चढ़ा कर यह भावना करना कि जनम,जगा,मरण का गंग दूर हो ।
- २. चंदन से भव आताप की शांति हो।
- · ३. ऋत्तत- मे आविनाशी पद की प्राति हो 🔉
 - ४- पुष्प- सं काम विकार का नाश है। ।
 - ४. नैवेदा- सं बुधा रोग शांत है। ।
 - ६. दीप- से मोह अधकार का नाश हो।
- 🕟 ७. पूप- में अद्य कर्म का नाश हो [
 - द. फल- से गांच पर की प्रापि हो ।

- २. इससे हमारा चंचल चित्त जो लगातार एकही विचार पर लगा नहीं रह सकता, इमपकार 'विचार परिवर्तन' (Variation of thoughts) होजाने से, श्रासानी से कक जाना है।
- ३. जिमप्रकार किसी गानिश्राले का मन त्राजे की सुर ताल की महायता से ज्यादा लगता है उसी प्रकार 'ह्रब्य पूजा' के द्वारा 'भाव पृजा' में ज्यादा ठहरना है।

अब हमें उपरोक्त तीनों वातों की विवेचना करके देखना है कि हमारा यह उत्तर कहाँ तक ठीक हैं:-

१. निस्सन्देह पूजा के दो भेद, द्रव्यपूजा श्रोर भाव पूजा, जैन शालों में माने गये हैं। किन्नु उस समय के जैनाचार्य वचन और शरीर को श्रान्य व्यापारों से इटाकर उन्हें श्रपने पूज्य के प्रति स्तृति पाट करने और श्रंजुलि जोड़ने सादि रूप से एकाय करने को 'इत्य पूजा' श्रीर मन के एकाय करने को 'माव पूजा' मानते थे जैसा कि श्री श्रामितगनि श्राचार्य के निश्नलाखित बाक्य से प्रकट हैं—

वचा विश्रह संकोचो द्रव्यपूजा निगशते । तत्र मानस संकोचो भावपूजा द्वाननैः शिर

जैन धर्म संबंधी दूसरे विषयों के तो हजारों संस्कृत के प्राचीन प्रंथ उपलब्ध हैं किन्तु पूजा विषयक बहुत कम दृष्टि में आते हैं. और वे भी प्राचीन नहीं | इसका कारण यह है कि प्राचीन काल में जानियों में आजकल जैसी आडम्बर युक्त पुजन प्रचालित नहीं थी । लाग मन्दिरें में जाकर, जिनेन्द्र प्रतिमा के सामने खड़े होकर या बैठकर, श्रानेक प्रकार के समक्त में त्राने योग्य स्तोत्र पढते त्रीर उनके गुणों का स्मरण करते हये उनमें तक्षीन होजाते थे। वे, आजकल की सी जल, चंदन आदि चढ़ाने की पूजाओं के द्वारा नहीं किन्तु आईत भक्ति . सिद्धभक्ति आदि अनेक प्रकार के पाठों द्वारा (जिनमें से कुद्र प्राचीन पाठ घार भी पाये जाते हैं), पूजा और उपासना करते थे; श्रथवा ध्यानमुद्रा में बैठकर परमात्मा की मूर्ति की हृदय में धारण करके उनके गुणों का चिंतवन करते हुथे उनकी उपासना किया करते थे। किन्तु समय ने पत्तटा खाया श्रीर ऐसी परिन्यित उत्पन्न होगई जव" मैं जैनी हूँ " ऐसा कटना तक आपत्ति हा घर समभा जानेलगा इतिहास देखने वाल जानते हैं कि शंव राचार्य के समय में हिन्दुओं और जैनियों में विरोध भाव बहुत बढ़गया था और जैनियों का पच निर्वल होता जारहा था। इसकारण उस समय में उन पर

तरह २ के अत्याचार किये जाते थे यहाँ तक कि कई स्थानी में तो जैन मुनि दीवारों तक में जीते जी चुनवा दिये गये थे। यहो।पर्वति आदि वाहरी हिन्दु धर्म के विद्वान होने से उस सभय के जैन विद्वान शह नाम से अपमानित किये जाते थे तथा जैन धर्म और जैनियों का श्रस्तित्व तक क्रायम रहना कठिन होगया था। उस समय के दाविश के पांड्या राज्य के विषय में विंसेंट ए. स्मिथ अपने भारत के इति शस में लिखतें हैं-"\"ery soon after Hiuen Tsang's stay in the south, the Jains of the Pandya Kingdom suffered a terrible perseeution at the hands of the king variously called Kuna, Sundara or Nedumaran Pandya, who originally had been a Jain and was converted to a faith in Siva by a chola queen. He signalized his change ofcreed by atrocious outrages on the Jains who refused to follow his example. Tradition avers that eight thousand of them were impaled. Memory of the fact has been preserved in various ways, and to this day the Hindus of Madura, where the tragedy took place, celebrate the anniversary of 'the impalement of the Jains' as a festival (utsava)". इसका आशय यह है कि पांड्या राज्य के जैनियों को ह्यतचांग के देशिए। में टहरने के पश्चात् शीघ्र ही, वहाँ के

सम्राट्, कुण के श्रात्याचार सहन करने पड़े थे जो श्रारम्भ में जैनी था किन्तु पीछ जाकर श्रपनी चोल वंशीय रानी के प्रभाव से शेव बनगया था। उसने श्रपना धर्म परिवर्तन करते ही, उन जैनियों पर भी श्रनेक श्रमानुषिक श्रात्याचार किये कि जिनने उसकी तरह शेव बनने से इनकार कर दिया था। इतिहास कहता है कि ऐसे श्राठ हजार जैनी तो बिलकुल करल ही करवादिये गये थे। श्राज भी मदुग के हिन्दू उस स्थान पर पति वर्ष उत्सव मनाते हैं।

उपरोक्त समय में, जिसका हम जीनया की घटती का समय कह सकते हैं, लगभग समय ही भारतर्वि में, जैनियों के प्रति हिन्दुओं का ऐसा ही वर्ताव रहा है। इस बात को सब जानते हैं कि दो विरोधी पद्म वाले तब तक ही एक दूसरे का मकावला करने रहते हैं जबतक उनको अपनी विजय की आशा गहनी है और जब उनमें से किसी को में दूसरे पक्ष वाले के मकावले में अपनी मफलता की आशा विलक्त नहीं रहती नव वह उससे मिलजुलकर और उसे खुश रखकर ही अपना अस्तित्व कायम रखने का मयस करना है। ऐसे संकद से बचने का जैनियों के लिये भी यही उपाय था कि भीतरों तौर पर जैन धर्म को वालन करने रहकर बाहरी

तौर पर हिन्दु आं का सा आचरण करते रहवें अपने धर्म की रहा के लिये, वे इसके सिवाय और कर ही क्या मकते थे र उस समय के जैनाचारों ने, जब जैनियों को मज़बूर होकर हिन्दू धर्म की कियाओं को अपनाते हुये देखा तो उनका जैनत्व न चला जावे इस भय से, उन कियाओं के बाहरी रूप में कुछ परिवर्तन करके उनके मूल में जैन धर्म संबंधी कल्पनाएं डालदीं और उनको जैन शाखों में स्थान देहिया। जैनी ही क्या, लगभग मब ही धर्म बालों को, जब २ भी उन पर ऐसा धर्म संकट आपड़ा है, नब २ ऐसा ही करना पड़ा है और जैनी भी उस ममय यदि ऐसा न करने तो बहुत संभव था कि आज भारतवर्ष में जैन धर्म का भी बौंद्धधर्म की तरह नाम मात्र ही अवरोप रहपाता। इसका अय द्वय, केत्र, काल, भाव के मर्मझ, उन जैनाचारों को है जिन्होंने विचारशीलता से काम लेकर, बिना उसके मूल रूप की विकृत किए, जैन धर्म की रहा करती।

इतिहास से यह भी साबित है कि जैनियों की इस घटती के समय में धार्मिक द्वेप बहुत बढ़ गया था यहाँ तक कि और तो क्या, हजारों जैन मंदिर और मूर्तियाँ तक नष्ट करदी गई इसीकारण उस समय के जैनानायों ने जैनियों से जैन सन्दिरों के आहरी भाग में हिन्दु औं के मैक्जी की सी मूर्तियाँ स्थापित करवाना शुरू कर दिया ताकि उनका उनसे हिन्दूपन टपकता रहे तथा जैन शास्त्रों में उन मूर्तियों को मानमद्र, त्रित्रपालादि नामों से प्रासिद्ध करके जैनियों के उन संबंधी विश्वास में जैनत्व की छाप डालदी।

उपरोक्त प्रभाव जैनियों की उपासना पद्धति पर भी पड़े दिना नहीं रहा है। जिलप्रकार हिन्दु को के यहाँ नैवेदा श्रादि चढ़ ये जाते थे उसी प्रकार जैनियों के लिये भी, जैन धर्म के सिद्धान्तों का रङ्ग चढ़ा कर, श्रष्ट द्रव्यपूजा की कल्पना कार्गई श्रीर उस उनमें प्रचलित करिया। इस प्रकार बह उपासना का स्वितसादा ढंग धीर २ आडम्बरयुक्त होगया श्रीर जो जिनेन्द्र न ता किसी के बुलाने से जाते श्राते श्रीर न किसी के कहने से कहीं बैठते, ठहरते या नैवेद्यादि प्रहण करते हैं उन्हें बुलाया, बिठाया जानेलगा श्रीर नेवेद्यादि श्रर्पण करने के बाद विस्तिनात्मक शब्दों के द्वारा विदा किये जाकर उनसे अपने अपराध त्रमा करवाना भी पूजा का आवश्यक श्रद्ध बनगया। परन्तु । निष्पन्त दृष्टि से यदि त्राप विचार करें तो श्राप को निश्चय होजायगा कि ये बातें जैन धर्म के सिद्धान्तों से क्रवई मेल नहीं खातीं क्योंकि वे हिन्दूधर्म की केवल एकप्रकार की नकत के रूप में है जो कुछ परिवर्तन करके अपनाली गई हैं। उद हरण के लिये हिन्दुओं की 'पंचायतन पूजा' में का कुछ अंश जैनियों के विसर्जन पाठ से मीलान करने के लिये उद्भृत किया जाता है—

आवाहनं न जानामि न जानामि तवार्चनम् ।
पूजां चैव न जानामि समस्व परमेश्वर ॥
श्वन्यथा शरणं नाम्ति त्वमेव शरणं मम ।
तस्मात्कारुण्य भावेन रक्तस्य परमेश्वर ॥
मंत्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वर ।
यत्यूजितं भयादेव परिपृणं तदस्तुमे ॥
यद्यरपद्श्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत् ।
तत्सर्वं सम्यतां देव समस्व परमेश्वर ॥

उपरोक्त वाक्यों के हमारे विस्तान के उसी से मिलते हुए श्रंश से यील न करने पर इसमें संदेह नहीं रहता कि उपरोक्त के ही शब्दों में कुछ परिवर्तन करके हमने उसे अपना बना लिया है इस विषय में हम (जेनी) यह कदापि नहीं कह सकते कि पूर्वोक्त में हिन्दुओं ने हमारी (जैनियों की) नक़्ख की है क्योंकि हमोर यहाँ नेवेद्यादि चढ़ाने और इसप्रकार

के विसर्जन , आवाहन आदि की पूजाओं के कोई माचीन प्रंथ नहीं हैं और हिन्दुओं के यहाँ वेदों तक में आवाहन श्रीर विसर्जन पाया जाता है। हिन्दु इस जात को मानते हैं कि देवना बुलाने में आते, बैठते और चढ़ाया हुआ द्रव्य प्रहण करके, विदा करने पर, वापम चले जाते हैं और उनके प्राचीन धर्मशास वेदािट में ऐसी पूजाएं भरीपड़ी हैं किन्तु हमारे धार्मिक उसूलों से ये बात कतई मेल नहीं खाती । वास्तव में यात यह हैं कि उस समय के जैनियों को. हिन्दू धर्म के प्रभाव में र्वकर, यह पूजा का ढंग भी प्रहर्ण करना पड़ा शा श्रीर उस ममय के आचार्यों ने . लोगों का धार्मिक विश्वास न डिगने पावे इस गरज मे उसी को 'द्रव्य पूजा' नाम दंदिया । श्रस्त श्राप समक्त गये होंगे कि जिसका वर्णन पहिले किया जा चुका है वह द्रव्य पूजा ही, प्राचीन श्राचार्यों की बनाई हुई द्रव्य पूजा है, जल चंदनादि से हानेबाली नहीं। बहुधा हमारे जैनी भाई नैवेदादि चढाने की पृष्टि में एक श्रीर उदाहरण दिया करते हैं। व कहते हैं-- "जिसमकार किसी राजा के सामने जाते समय हम , हमारे हृदयों में उसके प्रति श्रादर होने से ,उसकी भेंट के लिये कोई न कोई बस्तु अवश्य लेजाते हैं उसीप्रकार जिनेन्द्र देव जो देवों के भी देव और राजाओं के भी राजा हैं.

उनके भी सम्मानार्थ हमें कुछ न कुछ चढ़ाने को अवश्य लेजाना चाहिये और जो लोग रीते हाथ जाते हैं- समझलो कि उनके हृदयां में उनके प्रति कोई आदर भाष नहीं है" इमारी समक्त में ऐसे उदाहरणों का प्रभाव बच्चों श्रीर मुखीं पर ही पड़ सकता है, सममहारों पर नहीं क्योंकि राजा की उपमा उन बीतराग अरहंतों को नहीं लग सकती । राजा तो भेंट आदि के इच्छक और लक्षी के उपासक होते हैं और भेंट आदि करने पर हम से प्रसन्न होते हैं किन्त उन जिनेन्द्र कान तो हमारी भेंट की ही इच्छा होती है और न चढ़ाने पर प्रसन्न और नचढ़ाने पर अप्रसन्न ही होते हैं अतः हमारा वह द्रव्य चढ़ाना व्यर्थ होता है। यदि राजा की उपमा उन पर लगादी भी जाव नी जिस प्रकार राजा के आगे, जिस वस्त की वह बुरा समक्ष कर घूणा की दृष्टि से देखन लग जाता है वह वस्तु भेंट करने पर वह नाराज हा होगा इस भय से, ऐसी वस्तु को कोई भी भेंट नहीं करता उसीपकार उन जिनेन्द्र के भी, जो जुबा तृषा आदि सर्व प्रकार की वेदनात्रों से मुक्त हैं, जिनको किसी भी तरह की इच्छा नहीं है और जो सब वस्तुत्रों का त्याग करचुके हैं, उनकी इच्छा विरुद्ध (त्याग कीहुई) बम्तुएँ भेट करना उचित नहीं है क्योंकि ऐसा करना जनका अनादर और उपहास करने के समान है। इस पर प्रथम विचार किया जाचुका है कि उपासना परमात्मा के गुकों के चिंतवन (ध्यान) के रूप में की जानी चाहिये। किन्तु गृहस्थों का चित्त (जो सांसारिक प्रपंचों में फँसे गहते हैं) सर्वता व्यय छोर श्रास्थिर रहता है श्रतः उपासना के विषय में एकाप्र करने में प्रथम हमें उसे शांत (समभावरूप) करना पड़ता है। यह कार्य बारह प्रकार की भावनाश्रों *तथा वैराग्य

अ उपरोक्त वारह भावनाएँ ये हैं:- (१) श्रानित्य-जीव आदि समस्त वस्तुएँ पर्याय रूप से श्रानित्य (नामुसान) हैं श्रतः उन चांसिक पर्यायों से मोह न करना चाहिय(२) श्रशरण-इस जीव को दःखः गरण ने बचा सकत की सामर्थ्य रवनवाला कोई नहीं है. जैसे कर्म करेगा वैसा फल भागना ही पंडगा (३)संसार भावना- अनेक जन्मों में यह जीव अच्छे से अच्छे सुख भोग चुका (फरभी नतो इसकी विषय तृष्का मिटी और न शांति मिली श्रतः सुख भी लालसा से इन इन्द्रिय जनित चिणक सुस्री के पीछे दोड़ना ब्यर्थ है (४) एकत्व-मरे इस जीव को अल्ला ही जनमना, मरना व दुःस भोगना, पड़ता है और वह सबसे निराला एक आनन्दमई और ज्ञान आदि गुवा से युक्त है। (४) अन्यत्व-मेरे आत्मा से शरीरादि व सर्व ही आत्माएँ व श्वन्य पांचीं इन्य बिलकुल भिन्न हैं। (६) श्रश्चाचि- यह शरीर मलभूत्र से भरा है और इसके रोम २ से मल बहुता रहता है ऐसे शरीर से ममत्य त्याग कर अपना कर्तव्य करते रहना चाहिये। (७) जाकाब-किस प्रकार कमें का जीव की तरफ आकाब

भौर शांति के उत्पादक भावों के जिनवन में ही हो सकता है। इसप्रकार मन के समभाव रूप (शांत) होजाने पर उसे भपने उपासना के विषय में एकाम करने की आवश्यकता होती है क्योंकि विना एसा किये अभीष्ठ पल की सिद्धि होही नहीं सकतो । मन की एकामता का नेत्रों से धनिष्ठ संबंध है। जो अपने नेत्रों को वश में कर लेता है उसके लिये मन का एकाम करना आसान होजाता है अतः इस कार्य की मिद्धि के लिये मूर्ति के हाग उपासना करने वाले तो जिनेन्द्र की वीतराग अबि पर हाँए को स्थिए करके मन को एकाम करते हैं और दूसरे लोग, नासिका पर स्थिएकरके । मूर्ति के हारा हिष्ट को स्थिर करने मन वालिया की उस सुंदर मृर्ति को एकटक देखने रहना चाहिये, न तो

होता है इस पर विचार करना (=) संवर- कमों के श्रास्त्रव को रोकने के उपायों का चितवन करना। (१) निर्जरा-जिन उपायों से कमों से सुटकारा मिलतां है उदका चितवन करना (१०) लोक भावना विश्व की विशालना और विश्वलीला का विचार करके उस मब पर विजय प्राप्त करने की शक्ति वाले श्रात्मा की शक्तियों का चितवन करना (११) वोधि दुलंभ-श्रात्मो-स्रार के मार्ग सम्यग्दर्शनश्चानचारित्र का प्राप्त होना श्रस्तंत्र कठिन है श्रतः प्राप्त होने पर उसे खोना न चाहिए। (१२) धर्म-धर्म श्रात्मा का स्वभाव है श्रीर श्राहसार्य है।

आँखें ही ऋपकानी बाहिये और न आँखों की पुतालियों की ही इधर उधर फिरने देना चाहिये । यदि आंखों में पानी श्राजाय तो श्राने दिया जावे किन्तु अस्ति यंद्र न की जावें। इसका श्रभ्यास प्रात:काल श्रीर मांयकाल दोनों ममय करें। पहिले दिन जब आँखों में पानी श्राजावे तब देखना बंद करदें पश्चात् क्रमशः बढ्ते २ जब १५ मिनिट तक इकटक देखते रहने का अभ्याम होजावे तब मृति के सामने देखना बंद करके अपने अतरंग में दृष्टि को फेरिय। वहाँ आपको मूर्ति का प्रतिविस्व दिखाई देगा। उसे विशेष समय तक देखते रहने का श्रभ्यास की जिये ज्यों २ श्रभ्यास बढता जावेगा, वह प्रतिविम्ब उतना ही अधिक स्पष्ट भासेगा। उस समय त्राप उन परमात्मा के ऋरहंनावस्था के जीवन की घटनाओं से शिक्षा प्रहरण की जिये और उनके गुर्णों के चितवन के साथ अपने आत्मानकप का चितवन की जिथे कि मैं श्रत्यन्त निर्मल, शुद्ध, श्रनन्त ज्ञान श्रौर श्रनंत शक्ति का भंडार, श्रनंत मुख से भरपूर, अपने मन बचन काय पर शासन करने में पूर्ण समर्थ और मर्व प्रकार के पापी और विकारों से परे हूँ। तथा हुढ़ विश्वास के साथ ज्ञानवर्ग्णी, दर्शनावर्ग्णी ऋदि श्रष्ठ कर्म का, एकएक को लेकर संकल्प कर्माजये कि उनके परमाशु आपके शरीर से निकल २ कर जारहे हैं और उनके क्य होने के साथ ही ज्ञान, दर्शन आदि गुण क्रमशः प्रकट होते जारहे हैं (यह ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि जिसे विचार का आप चिंतवन कर रहे हैं उसके अलावा कोई भी दूसरा विचार मन में न आने पावे और यदि आजावे तो उसी समय उसे निकाल देना चाहिये)। किर देखिए! आप की इस

^{*} संसार में कोई भी ऐसा कार्य नहीं है जो अटल विश्वास और दढ़ संकल्प के द्वारा पूरा न हो सके। विश्वास के बत्त से मानसिक शक्तियां एकतित हो कर संकल्प की दढ़ता से काम की पूरा करने की तरफ लग जाती हैं। अदाई न (संश्वी) पुरुप सहेंव शंकावादी बना रहता है। वह कहता है कि में अश्रक हूं, दीन हूं, डरपोक हूं, अब में क्या ककं, में बीमार हूं, मुक्त कि नी का रोग तो नहीं लग जायगा मेरा काम होगा या नहीं, मेरी पावनशाकि ठीक नहीं है, मेरे दिन अब खराब आगय हैं, मेरी पावनशाकि ठीक नहीं है, मेरे दिन अब खराब आगय हैं, मेरी प्रहद्शा अब ठीक नहीं है आदि। वह इस प्रकार चिता भय और शंका के विचारों को मनन करता रहने से तथा दुः ब दिखा और शंका के विचारों के ही विचार में पड़ा रहने से, सदैव दुखी ही बना रहता है। भय से मनुष्य की मृत्यु तक होजाती हैं There is nothing but fear to fear आर्थात भय ही एक ऐसी वस्तु है जिसस मनुष्य को सरते रहना चाहिये। इसी लिथे जैनधर्म ने शंका और भय को सम्यन्दर्शन का अर्थाचार

एक ऐसे विशेष क्रम से ब्रमात फिराते लेजावें जिससे वह उकताने भी न पावे भीर हमारे काबू में भी बना रहे। बस, इसी को Variation of thoughts कहते हैं परन्त प्रश्न यहाँ यह पैदा होता है कि क्या Variation of thoughts बिना द्रव्य की सहायता के नहीं हो सकता है श्रववा क्या दृज्य उसके लिये श्रानिवार्य है ? इसका उत्तर Variation of thoughts के अर्थ पर विचार करने से ही मालूम होसकता है जिसका अर्थ है 'विचारों का बदलना'। विचार तो तब भी बदलते हैं कि जब मन एक विचार से उकता कर भाग जाता है परन्तु यह विचारों का बदलना श्रीर तरह का है। इसमें विचारों के बदलने का कम पहिले से ही निश्चित कर लिया जाता है और इस प्रकार पहिले से निश्चित किये हुये कम के अनुसार विचार बदलते रहन सं मन भी उकता कर नहीं भागता और साथ ही उन निश्चित विचारों से बाहर न जा सकने से काबू में भी बना रहता है। इस दृष्टि से प्रचित्रत द्रव्यपूजा पर भी विचार करने पर आपके। माजूस होगा कि इसमें भी एक निश्चित कम से आठ प्रकार की भावनाओं (विचारों)का चिंतवन किया जाता है और इस प्रकार एक ही भावना का लगातार चितवन न होने से मन नहीं उकताने पाला । उसमें बोर्ड २ काल तक एक २ भावना की लेकर बारी

वारी से चितवन किया जाता है तथा प्रत्येक भावना के चितवन के समय उसके सिवाय कोई भी दूसरा विचार मन में नहीं त्राने दिया जाता इसलिये एकावता का भी अभ्यास होता है। जब मन एक भाषना के चितवन को छोड़ता है तो बेसे ही अपनी मर्जी के मुनाविक इधर उधर नहीं चला जाता प्रस्यत उसे. पहिल से निश्चित किये हुये कम के अनुसार आते बाली, उसके पछि की भावनी पर ही जाना पड़ता है। हमारे इस विवेचन सं आप समर्क गये होंगे कि प्रचलित द्रव्यपुता में जो कछ महत्व है वह निश्चित कमवाली उन आठ प्रकार की भावनात्रों में ही है जो उन द्रव्या को चढ़ाने समय कीजाती हैं। द्रव्य से उसमें किसी भी प्रकार की विशेषता नहीं खाती क्योंकि यह तोएक अनावश्यक वस्तु और हमारे हिन्दु भाइयों के अनुकरण में सीखा हुआ एक ब्राडम्बर है जिसकी महायना के बिना हीं, एक निश्चित कमवाली, भावनाओं के द्वारा हम ऋपने ध्येय के चितवन में एकायना संपादन करने का अध्यास कर सकते हैं। यदि इस प्रचानित अष्ट हुड्यपूजा में मे उन आठ प्रकार की भावनाओं के चितवनको निकाल दें तो ये क्रम २ में बढांय जाने वाल जलचंदनादि दृष्य किमी भी तरह Variation of thoughts के उद्देश्य की पूर्ण नहीं कर सकते और यदि जन्म जरा मरण है नाश के निये जन चढ़ाना हैं (जरग जरा सून्य

विनाशनाय जलं) आदि न कहकर केवल 'मेरा जन्म, जरा, मरण रूप रागे दूर हो' इस प्रकार कम २ मे आठों प्रकार की भावनात्रों का चितवन करते हुये चले जाव तो जलचंदनादि दृठ्य के बिना भी Variation of thoughts के उहेश्य की सिद्धि अच्छी तरह हो सकर्त। है। जल, चंदन आदि दृश्य में कोई भी ऐसी बात नहीं है कि वह किसी भी प्रकार से एका-त्रता संपादन में सहायक हासक अं। रून यह वान ही है कि 'जन्म, जरा, मर्गा के नाश के लिये', "जल चढ़ाना हूं", एंसा कहे बिना वह भावना हो ही न सके । इससे प्रकट हैं कि इस अष्ट द्रव्यपूजा में भी जो कुछ महत्व है वह द्रव्य में नहीं किन्त निश्चित कम में कीजाने वाली भावनाओं में ही है। इसी प्रकार कंठ किये हुँय पाठ, स्तुति श्रादि के द्वारा भी श्रल्पशार्क वाली को एकाप्रता का अभ्याम बहुत आसाना में होजाना है क्योंकि उसमें भी पूर्व निश्चित कम में थोड़ २ समय तक उनके एक २ पर्के अर्थ पर चिनेबन करने हुये जान। पड्ता है नथा ऐसा ही लाभ ब्राहरी प्राची के जीवन की घटनाओं बीर बारह भावना आदि का किसी पूर्व निश्चित कमानुसार चितवन करने से भी होता है।

(३) यह कहना. कि जिस तरह किसी गाने वाने का मन राजे की सुरताल की सहायवा से ज्यादा लगता है उद्या

ाकार हत्य पूजा के द्वारा भाव पूजा में मन ज्यादा ठहरू सकता है, भी ठीक नहीं हैं। यहां विचारने की बात यह है कि एका-शता सम्पादन का जो गुए वाजे की स्रताल में होता है वही क्या द्रव्य में भी हो मकता है ? वाजे की सुरताल (संगीत-ध्वान) का मनमेहक गुण तो लोक प्रमिद्ध है और उसमें एसी शाकि है कि मनुष्य की शकत देखते ही दूर भागने वाले मृग तथ। सर्प आदि जन्तु भी उस मधूर ध्वनि से मोहित होकर अपन पकड़न वाले की कोई परवा न करने हुये उसके मनने में दनचिन होकर जहां के नहां खड़े रह जाते हैं श्रीर श्रपनी स्वनंत्रता थो वैटते हैं। अनः अप्र द्रव्य की वाजे की स्रताल के समान मानना ठीक नहीं है। उदाहरण के लिये दें मनुष्यों का विचार कीजिये जिनमें से एक तो गाना गा रहा है और दूसरा अपने इष्टदेव की पूजा बोल रहा है। दोनों के लिये एक २ बाजे का प्रयन्ध कर दीजिये। बाजे की ध्वति से जिस प्रकार वह गाने वाला गाने में मस्त होजाता है। उसीप्रकार वह पूजा करने वाला भी उस पूजा की भावनाश्रों में लीन होजाता है। किन्तु दोनों को बाजे के स्थान में अष्ट द्रव्य देशीजिये और उन्हें समभाइये कि इससे तुम्हारा मन ज्यादा लगगा-फिर देखना वह गाने बाला श्रापकी इस बात का क्या उत्तर देता है ? मतलब यह है कि इट्य में मन की एकामता

की बेढ़ीने की कोई शक्ति नहीं है और स्वरों के जनार चढ़ाव से उत्पन्न होने वाली बाजे की इस संगीत ध्वनि में यह शांकि प्राकृतिक तौर पर ही भरी पड़ी हैं। अप देखने हैं कि बेन्ड श्रादि बाजों में यह पता न होते हुए भी कि उनके बजाने बाले किम भावना से युक्त कीनमा गाना गा रहे हैं तो भी केवल उनकी ध्वनि मात्र से हमारा मन सब जगह से खिल कर उनके सनने में एकाथ होजाता है। इसमें प्रकट है कि स्वरों के उतार चढाब मप बाजे की ध्वनि में तो चितवन योग्य किसी भावना का अस्तित्व न होते हुए भी मन का एकाम कर देने की शक्ति हांती है किन्तु हुटयपुजा में जिन भावें। का चितवन करके प्रध्य बढ़ाया जाता है, वे भाव यदि निकाल दिये जावें तो कारा ं तृष्य बदाना कुछ भी नहीं कर सकता। वास्तव में वे निश्चित क्रमबाजी बाठ प्रकार की भावनाएँ ही हैं जो, एक ही भावना में लगातार बहुत समय तक एकामता रख सकने में ऋममर्थ हमको, धीरे २ उस योग्य बनाती हैं। दृष्य में ऐसी कोई भी विशेषता बाज नक न सो देखी गई और न सुनी गई कि उसकी वाजे के मुस्ताल से समानता ही जासके।

जलचंदनादि दृष्ट्य चड़ाने के पत्त में आजकत बहुधा जो कुछ कहाजाना है उसका वित्रेचन श्रव तक काफी किया जाचुका है श्रीर उस पर निष्पण भाव से विश्वार करने पर इसमें संदर् नहीं रहता कि इसके चढ़ाने से हमारी भाव पूजा में हमें कोई भी लाभ नहीं पहुंचता तथा प्राचीन समय में भी जैनियों में इस ढंग की द्रव्यपूजा नहीं की जाती थी किन्तु हमारी घटनी के समय में ही हमारे हिंदू भाइयों का अनुकरण करके उनकी श्रीर बहुत सी वार्ती के साथ हमने इसे भी अपनालिया है।

अब उन नुराइयों का दिग्दर्शन करा देना भा उचित होगा जो. हमारी जन समाज में इस द्रव्यपूजापद्धति के कारण उत्पन्न होगई हैं। यदापि जैन धर्म इस बात को नहीं मानता हैं कि अरहंत, जिनकी मन्द्रिरों में प्रतिमाएं हैं वे. हमें सुख दुःग्व देते या हमारे कमीं को नम्न कर देने हैं तो भी जिस श्रेखी के मनुष्यों के नुधार के निमित्त धर्यालत द्रव्य पृजा की आवश्यकता बताई जाती है उस श्रेणी के मनुष्यों के चित्त पर उसका अन्छा प्रभाव नहीं पड़ता। यह बात मानी हुई है कि प्रत्येक धर्म के मानने वाली में बहुत थोड़े ही मनुष्य ऐसे होते हैं जो अपने २ धर्म की, उसके धार्मिक तत्वों को समभ कर ही, प्रहाण किये हुये हो तथा ऐसे मनुष्यों की ही संख्या अधिक होती है जो विना उसके तत्वों को समभे केवल कुल परंपरा के कारण उस धर्म को सच्चा समभ कर उसके अनुस्वयी यने गहने हैं। जो लोग एक धर्म को छोड़ कर दूसरे धर्म को को घहण कर लेते हैं उनमें भी वहन से तो ऐसे होते हैं जो यातो पेट के सानिर ऐसा करते हैं (भारतवर्ष में ईसाइयों की संख्या द्यधिक करके इसीप्रकार वड़ी है) या प्राण नारा के भय से (इस्लाम का प्रचार अधिक करके इसी प्रकार हुआ है) या योगाध्यास से उत्पन्न हुई मिद्रियों के जमत्कार से प्रभावित डोकर (यह बात लोगों में आपतीर से देखी जाती है कि जहां किसी साधु, महात्मा ने कुछ करामातें दिखाई कि लोग उसे पूरी श्रद्धा से देखने लगजाते हैं और उसके का मनुष्य पर भी नहीं। वे ऐसी सिद्धियों का होना समाई का प्रमाण मानते हैं *) और या अपने श्रद्धापात्र बड़े आहामियों के अनुकरण के रूप में ऐसा करते हैं। इसित्ये हमारा यह

^{*}उदाहरण के लिये मंडेलवाल जैनियों की उत्पत्ति के इतिहास पर विचार कीजिये। वह इसप्रकार हैं कि एक समय लंडेला प्रांत में मरी रोग फैला हुआ था। कुछ जैन मुनियों ने वहां पदापर्ण किया और उनके प्रभाव से वह रोग उस प्रांत से ही मिट गया यद्यपि यह केवल योगाभ्यास से उत्पन्न हुई सिद्धि का प्रभा था और धर्म की सत्यता से इसका कोई संबन्ध नहीं था कथापि उन लोगों ने इसको जैन धर्म की सत्यता का प्रमाण नमका और उस प्रांत के बहुत से लोग जैनी होगये।

कथन अनुचित नहीं है कि किसी भी धर्म के अनुवाधियों मं, उसके तत्वों की समक्र कर उस धर्म की मानने वाले. बहुत अल्प संख्या में होते हैं। ऐसे मनुष्यों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे उसकी प्रत्येक किया को समन २ कर ही करेंगे। श्रतः धर्म की प्रत्येक किया का रूप एसा होना चाहिये कि उसका असली आशय साफ तौर से प्रकट होता रहे और अल्प बुद्धि बाले उसका श्रीर मतलव न समभलें। इस दृष्टि स प्रचीबत द्रव्य पूजा के ढंग पर विचार करने से मालूम होगा कि इससे वर्तमान जैन समाज में धर्म के ताम पर मिध्याह्व की बृद्धि बहुत होगई है । लाग अग्हनों को हिन्दुओं के भे काता हरता ईश्वर समभ कर इस विश्वास को लिए रहते हैं कि उनकी भक्तिपूर्वक सवापूजा आदि करने पर और पूजा के लिय चांवल आदि द्रव्य भेजदेने पर वे हमें मख देने और संसार के दःखों से पीछा छुड़ा देने हैं। इसीकारण उनका प्रत्येक कार्य इसी भाव को लिये हुय होता है। जहां ज्वर आदि रागों से पीकित हुए कि मंदिरजी दीद जात हैं और उनका निवृत्ति के लिये 'भगवान की 'प्रचाल' के नातने की लुकार लाकर बांधते हैं और राग्न स **द्धटकारा** पाजाने पर उसे 'भगवान' का श्रतिशय सममते हैं। * .यदि इन्हें किसीप्रकार की विपत्ति आचेरती है तो भयभीत

^{*&#}x27;र्जानमाजी का 'गंदोद्द लगाने स, उनकी प्रकाल के मानन

होकर प्रतिहाएं करते हैं-हे महावारजा ! इस विपत्ति से खुढकारा मिल जाने पर में आपके दर्शन करने आउंगा और तब तक के लिये मेरे चांवल खाने के त्याग हैं आदि-अथवा उससे छुटकारा पाने के लिये मंडल मंडवात हैं या समऋषि आदि की पूजाएं करवाते हैं। मनलव यह है। कि हमारी जैन समाज के धार्मिक विचार आमतौर से हिन्दुओं के से होरहे हैं और यीद आप इसकी जांच करें तो जहां तक हमारा विचार है लगभग सबही जगह जैन समाज की ऐसी ही हालन आपकी हिष्टे में आवेगी। इस पुजा के ढंग ने और तो क्या. समाज के अच्छे २ विद्वानी और

की लकीर वांचन संतथा उसी प्रकार और देवी देवताओं की ममूत बगैरा लगाने से इस लोगों के दुः मों की जो निवृत्ति होती है उसमें उन प्रतिमाजी तथा उन देवी देवताओं की शक्ति का प्रभाव नहीं होता किन्तु उसका कारण स्वयं हमारी Will Poner संकल्प शक्ति ही है। जो लोग अपने भिन्न २ रृष्ट्वेच के प्रभाव से एसा हाना मानने हैं व मृल करते हैं और वे उस कस्तृरी मृग के सहश है जो यह न जान कर, कि जिस अमूह्य वस्तु की लोज में में हूं वह मेरे ही अन्दर मौजूद है. रात दिन उसीकी तलाश में व्यर्थ ही मारा २ फिरता रहता है। वास्तव में आपके अन्दर ही आपकी आत्मा की अनंत शक्ति छिपी पड़ी है जिस पर यदि आपकी पूर्ण अखा हो तो आप संसार की अनेक विश्व से भी विचित्र कार्य करने दिन्या सकते हैं।

कार्ययो तक की खाली नहीं जाने दिया है। यांबल आहि दृश्य चढाने का उनके मस्तिष्क पर कुछ प्रभाव ही ऐसा पड़ा कि उनके विचार और परिणाम स्वरूप पूजा पाठ आदि उनकी कृतिया. सत्र हिन्दू धर्म के आस्तिक विचारों के रंग में रंग गये। व भक्ति रस के प्रभाव में इनने द्वय गये कि उनको यह नक खयाल नहीं रहा कि ' जैनधर्म इश्रंग के कर्नापन की स्वीकार नहीं करना अतः उसमें भक्ति की भीमा बहुत मर्यादित हैं। इसके कुछ उदाहरणा भी देखिए। एक जैन कवि जिनेन्द्र से पार्थना करते हैं- ''नाथ माहि जैसे बने वेसे नारे। मोर्रा करनी कह्य न विचारा" आदि-करनी को ही ईश्वर मानेन वाले जैन कित के इस बचन में इश्वर कर्तृत्व का कितना भाष भरा हुआ है। पूजा के अंत में प्रति दिन प्रार्थना की जाती है-" सुन्न देना दुख मेटना यही तुम्हारी वान, मोहि गरीब की वीनती सुन लीजो भगवान"। शांति पाठ में भा प्रति दिन इच्छा की जाती है-"कुपा तिहारी ऐसी होय, जामन मरण मिटाबी मीये एक प्रसिद्ध कवि वृन्दावनजी अपनी संकटहरण् स्तुनि स कहते हैं-''हो दीनबंध श्रीपति करुसा निधानजी, अब मेरी व्यथा क्यों न हरे। बार क्या लगा, मालिक है। दा जहान के जिनराज श्राप ही, एवी हुनर हमारा कुछ तुम से छुपा नहीं । वजान

में गुनाह जो मुक्त से बन गया सही, कंकरीके चोर को कटार मारिये नहीं। "यही किव अपनी दूसरी स्तुति में लिखने हैं- "किप श्वान सिंह नवल अज वेल विचारे, तिर्यंच जिन्हें रंच न था बोध जितारे इत्यादि को सुरधाम दे शिव धाम में धार, हम आपसे दातार का प्रभु आज निहारे"। इसप्रकार छोर भी कई पूजा पाठ स्तुतियां आदि हैं जिन में ऐसी ही बांत भरी पड़ी हैं।

श्रव बताइये, इनका लोगों पर क्या प्रभाव पडता होगा ? ऐसी इ.लत में क्यों न वे, परमात्मा को हिन्दुश्रों के जैसे कती हती परमेश्वर सममते रहेंगे श्रोंर श्रपने ही अन्दर छिपी पड़ी हुई आत्मा की श्रनंत शाकि में श्रद्धाद्दीन होकर सांसारिक दुः खों सं भयभीत हुए, उन परमात्मा को ही सब कुछ सांसारिक सुख श्रादि देने का प्रभाव रखने वाल सममते रहेंगे ? निस्संद् इन सब बातों के कारण हमारी समाज का धार्मिक विश्वास श्रामनौर से मिथ्यात्व के कर में परिणत होगया है । लोग श्रात्मा श्रीर श्रात्मशिक में बिलकुल श्रद्धाद्दीन होगये हैं । वे श्रपन श्रापको, श्रात्मा के ब्रान श्रादि गुणों के प्राप्त करने की सामर्थ्य से रहित, तुच्छ सा व्यक्ति सममते रहते हैं श्रीर श्रपने श्रदेक सुख की प्राप्त को भगवान के प्रभाव पर श्रवलंकित

ममभ कर केवल रटीहुई पूजा या पाठ आदि के द्वारा (जिनके मनलब तक का मनन करने की इच्छा नहीं की जाती) भक्तिपूर्वक जलचंदनादि चढ़ाकर पूजा करने मात्र ही में धर्म सममते रहते हैं। ऐसे ('जेनी नाम के धारण करने वाले) मनुष्य क्या मम्यग्हिष्ट कहे जाने के योग्य हो सकते हैं और वे. जिनका अपनी आत्मा की शक्ति (योग्यना) में विश्वास तक नहीं है, यदि सांसारिक स्वार्थों के खातिर संसार में भीर श्रीर कायर बन कर जैसबर्म के सर्वास्क्रप्ट मूल सिद्धांत अहिंसा' को कायरता, भीकता अपेर भारत के पराधीन होने का कारण, त्र्यादि खिताय दूसरों से प्राप्त करवा कर जैनधर्म की अ प्रभावना करवात हैं तो आश्चय क्या हा है ? अतः हमें चाहिय कि निरुत्साहित कर्ने वाली (Passimistic)भावनाओं और पूजा पाठ का कभी विचार तक न करें नथा सर्वदा एसी ही भावनायाँ। मे युक्त पूजा पाठ का चिंतवन कियाकरें जो उत्सा<mark>हव</mark>र्धक (Optimistic) हो और आत्मवलको विकमित करने वाले हों ।

इसके उत्तर में संभव है श्राप यह कहें 'कि कारण दो प्रकार का होता है एक मुख्य, दूसरा निमित्त । परमात्मा की श्राह्मन-वस्था की मूर्तियों की पूजा श्रादि के निमित्त से हमारी श्राह्म- शुद्धि होकर हमारे कमें नाश होते हैं इसलिये निमित्त कारण रूपमें व हमारे कमों के नष्ट करने वाले हैं"। किन्तु इस पर आप स्वयं ही पन्नपातरहित होकर विचार करें तो आपके। माल्म होसकता है कि अल्य समम्मवाले लोगों पर कि जिनकी ही मंख्या इस ममय अधिक दिखाई देती हैं इसका वेमा ही असर पड़ता है जिमका वर्णन ऋपर किया जाचुका है। व उम निमित्त कारण के रहस्य की समम्मेन न पाकर उसकी मुख्य कारण ही मान लेते हैं * तथा इसप्रकार अर्थ का अन्थे होजाता है।

शाजिकल मंदिरों श्रोर तीथों के भगड़ों में लाखों रूपया स्वाहा हो रक्षा है वह किसी से छिपा नहीं है। हमारी धर्मान्धता श्रीर पूजा सिद्धान्त से अनिभन्नताही इव्का कारण है। जिन मूर्तियों की स्थापना का उद्देश श्रपना श्रीर दुसरे लेगों का श्रात्मकस्याण करने का था श्रीर जिनके गुणों के 'चतवन से हर एक मनुष्य स्वतंत्र होकर श्रपना श्रात्मकल्याण कर सकता था उन्होंको श्राजकल िनके कड़ेज़ में वे श्राजाती हैं वे ही श्रपनी मिल्कियत समभने लग जाते हैं श्रीर उनकी सेवा करने श्रीर दृश्य (जल चंदनीद) चढ़ाने की व्यर्थ की बाहरी श्राइंबर की वातों के लिय, जिनमें कोई धार्मक तत्व नहीं है, लड़ कर विश्वमंत्री के स्थान में कलह का श्रचार करते हैं। यदि श्राज ही हम इस श्राइम्बर को (जो धर्म का श्रावश्यक श्रग नहीं है) श्राइदें तो इस कलह का नाम भी न रहे श्रीर लाखों रुपये का जो मुकहमेयाज़ी श्रीर इस श्राइंबर में दुरुपयोग हो रहा है घट नहोंने पावे।

समक में नहीं श्राता कि ऐसी की नसी श्रावश्यकता है जिसके लिये निमित्त कारण के हत से ज्यादा महत्व देकर समली कारण के महत्व को इतना गिरा दिया जा रहा है। सतः वर्तमान परिस्थित में यदि वे, उन मृतियों के नाम पर जिनकी उद्देश्य रूप से वे केवल वीतराग परिणामों भी प्राप्त के लिये ही पूजते हैं, उपासना की श्रासलियत को न समक सकने से ठ्यथ की छोटी २ बातों के लिये लड़ कर बजाय वीतराग परिणाम के कवाय को मोल लेलेते हैं, जाति के हजारों बच्चों के, उचित शिक्षा न मिल सकने से, खोमचे बचते फिरते रहने श्रीर पांच २ रूपये की दूकानों पर माड़ देनेकी नोकरी के लिये लाला यित रहने पर भा, उनकी शिक्षा श्राद उपयोगी कार्यों में खर्व न करके केवल मंदिरी (जहां पहिल से हा बहुत काफी रूपया होता है श्रीर सत्ताधारी पटेलों के घरू कार्यों में काम श्राता रहता है) श्रीर प्रतिष्ठाशों में ठ्यय करने में ही धर्म समकते हैं तो श्राक्ष्य ही क्या है!

समाज के अच्छे २ संमभदार व्यक्तियों को भी आमतौर से भगवान की पूजा के लिये मंदिरों में सामग्री भेजते देखा जाता है जिसके द्वारा यातो दूसरे लोग पूजा करते हैं और या नौकर । हम पूछते हैं कि जिस पूजा का उद्देश्य अरहंतों के गुणों के चितवन के पिग्णामरूप से होने वाली भावीं की निर्मलता हैं क्या उस उद्देश्य की प्राप्ति केवल सामग्री भेजने मात्र से ही होजाती हैं अथवा क्या चार प्रकार के दोनों में से किसी भी प्रकार के दान में उसकी गिनती की जासकती है ? कैसा घोर पतन है ! जैन धर्म के अनुमार यह अंधर नहीं है कि शुभ भाव तो कोई करे और उसके फलस्वरूप पुण्य का बंध किसी इसरे ही ब्याफ़ि के साथ होजावे । एजन में परमात्मा के गुणां के म्मरण से जो पवित्रता आती है और पापों से रचा होती है उसका लाभ उभीको है। सकता है जो पृजन के द्वारा उनके शुखों का स्मर्श करता है । किन्तु फिर भी कितना जबरद्स्त मिथ्या-त्व फैला हुआ है कि चाहे उनके गुगों का. समना और पूर्ण अनुराग सहित, चिंतवन ५ मिनट के लिये भी न करते हों तो भी हमारा विश्वास यही है कि केवल मिक्स पूर्वक पूजा की सामग्री भजदेन मात्र से ही हमारे पुग्य वंध होजावेगा। वास्तव में देखाजाबे तो उसका ऋहंत तो खाते नहीं हैं इसलिये उसका उपयोग आपके कथनानुसार मान भी लिया जावे तो पूजा में मन को एकाम करने का ही होसकता है नथा जो शुभ कर्मों का बंध और पूर्व कर्मी की निर्जरा इस प्रकार होती है वह एकाप्रता के साथ उनके गुणों के चिंतवन से उत्पन्न हुए शुद्ध मार्वी

से ही होती है, अकेला द्रव्य जो हम सब पूजा के लिये मंदिरों में भेजते हैं और जो रूपया मंदिरों के अनावश्यक निर्माण व सजावट आदि में व्यय करते हैं वह कुछ भी कार्य कारी नहीं होमकता । इसकी अपना, जो लाखों रूपया, मन्दिरों की पृजा में व्यय किया जाता है और प्रतिष्ठाओं में, केसारियानाथ जी के कैसर चढ़ोन में क्तथा उन वीतराग मूर्तियों को आंगी और जेवर आदि से सजाने में, पानी की तरह बहादिया जाता है वहीं यदि जाति के गरीय बालकों की धार्मिक और लौकिक शिन्ता, विधवाओं की रन्ना और दूमरे लोगों में जनधर्म की प्रभावना (मामयिक ढंगसे) करने में व्यय किया जावे तो बहुत कुछ धर्म और जाति की उन्नति होसकती है। शिन्ता ही सब से अधिक आवश्यक वस्तु है क्योंकि विना धार्मिक तन्वों के ज्ञान के, सूत्रजी 'भक्तामरजी' का पाठ और पूजा आदि सब धार्मिक कियाएं केवल अधिक

अंक मिरयानाथजा पर केसर चढाने में जा रूपया प्रति वर्ष स्वाहा किया जाना है उसका यदि सदुपयोग किया जाव नो उससे निरसंदेह सेंकड़ों विद्यार्थी जैनधर्म की शिक्ता पाकर कैनधर्म की उन्निमें हाथ वैटा सकेन हैं। किन्तु यह तभी संभव हो सकता है जब हम अपने ज्ञानकपी नेत्र पर बंधी हुई अधविश्वास की पृष्टी को हटाकर देखना सीखें।

श्रद्धा से श्रोर विना उनका मतलब समें हुए ही की जाती हैं। एसी श्रंध-श्रद्धा से लाभ की श्रंपेचा हानि ही श्रिष्टिक होती देखी गई है क्योंकि लोग धम के श्रमली तत्वों को न समक सकने में धम के नाम पर बंद २ श्रमर्थ कर डालने हैं। सतः श्रंध श्रद्धा श्रंर श्रद्धान को मिटान के लिय जितना होसके उतना ही उद्योग श्रोर रूपया व्यय करना चाहिए तथा ऐसी कोई भी कियाएँ श्रोर श्राडम्बर-पूर्ण-कार्यों का श्वाज समाज में प्रचलित न होने देना चाहिए, जिनके कारण मिध्यात्व की यद्धि हो; क्योंकि यद्यपि यह ठीक है कि हम मनुष्यों को ज्ञानवान बनाने का प्रयत्न करें किन्तु इमका यह श्रंथं नहीं निकलता कि किसी भी कार्य का सीदासादा रूप न रख कर उसको इतना चक्करदार बनादें कि लोग उसके श्रमली तत्व की भी सममन में श्रममर्थ होजावें।

अय उन जैन विद्वानों में जो पुरानी लकीर को पीटते रहने में ही धम समझते रहते हैं और जिनको प्रत्येक नवीन बात में अधर्म की यू आती है, हमारा निवेदन है कि महानु भावो ! व्यवहार धर्म की कियाओं में देश काल, भाव की पिरिध्यति के अनुसार हमेशा से परिवर्तन होता आया है और हमेशा होता रहेगा : और तो क्या, हमोर पृज्य तीर्धकरीं ने भी देश, काल, भाव की आवश्यकता का विचार करके

अपना उपरेश मिस्र २ प्रकार में दिया है जो श्री बहुकेरस्वामी के प्रसिद्ध यंथ मृलाचार की निम्नलिम्बिन श्राकृत गाथा से प्रकट है:—

बावीसं तिन्थयमा सामाइयं संजमे उचित्सीत । छेदोबहा वागियं पुण् भयवं उसहो य वीरोय ॥ ७-३२ ॥

श्रधीत श्रजित से लेकर पश्चिताथ पर्यंत वाईम नीर्थंकरीं ने सामाश्रिक संयम का श्रीर ऋषमंद्रव तथा महावीर भगवान ने क्षेत्रोपस्थापना संयम का उपदेश दिया है। वेही श्राचार्य श्रामे लिखेत हैं:-श्राचित्रखंद्र विभिज्ञिद्धं विष्णाद्द्र चावि सुहदर होदि।

एदेन कारणेन दु महत्वदा पंच पणण्ता ॥ ३३ ॥ त्रादीए दुव्वि मोधले सिह्लो नह सुट्ट दुरसुपालया । पुरिमाय पन्छिमा विद्व कप्पा कप्पं स जासंति ॥ ३४ ॥

जिसका आशय यह है कि पांच महाजतों (छेदोपस्थापना) का कथन इस कारण किया गया है कि इनके द्वारा सामायिक का दूसरों को उपदेश देना, स्वयं अनुष्ठान करना और अलहहा नीर से भावना में लाना सुगम होजाता है। आदि तीर्थ में शिष्य अत्यंत सरल होने से मुश्किल से शुद्ध कियेजात हैं, अंतिम नीर्थ में अत्यंत कर होने से गिठवाई से निवाह करने हैं; साथही इन दोनों समयों के शिष्य योग्य अयोग्य को नहीं जानते इस लिये आदि और अंत के नीर्थ में छेदोपस्थापना (पंच महाजत)

के उपदेशकी आवश्यकता हुई।

इससे प्रकट है कि प्रत्येक जैन तर्थिकर ने अपनेर समय की आवश्यकता के अनुसार, उस समय के मनुष्यों (उपदेश-पात्रों) की योग्यता का विचार करके उमके उपयोगी वैसाही उपदेश तथा अतिनयमादि का विधान किया है, परन्तु वह उपदेश भिन्न २ प्रकार का होते हुये भी उद्देश्य सब का वही एक 'आत्मा मे कर्म मल का दर करके उसे शुद्ध और मुखी बनाना' ही था। भगवान महाबीर के बाद के आचार्यों को भी अपने अपने समय की आवश्यकता के अनुमार धर्म की क्रियाओं में परिवर्तन करना पड़ा है। श्रावक के मृलगुणों को ही लीजिये, जहां स्वामी समंतभद ने अपने गत्नकरंडश्रावकाचार में मदा. मांस और मध् के त्याग और पंच अरावित रूप में अष्ट मृत गुणों का विधान किया है वहां दूसरे आचार्यों ने मदा, मांस मधु और पंच उदंबर फलों के ही त्याग को ऋष्ट मृलगुग मान लिया है। इस प्रकार श्रीर भी कई बातों में समयानुसार परिवर्तन होता रहा है जिसका अब तक के, प्रत्येक समय के प्रसिद्ध २ आचार्यी के प्रंथों के देखने से अच्छी तरह दिग्दरीन होसकता है। क्रे खेद है कि उत्पाद, ज्यय, श्रीज्य के अटल नियम

^{*} परिवर्तन से हमारा ऋभियाय उस परिवर्तन से हैं जो प्रत्येक समय में उस समय के उपदेशपात्र मनुष्यों की बुद्धि विचार, योग्यता आदि के अनुसार उस समय के लिये आध-श्यक होता है तथा जैसा अनावश्यक परिवर्तन, पिछले समय

की सत्यता पर विश्वास रखने वाले हम जैनी भी आज ऐसे मूर्ख बने हुये हैं कि हम यह तक विचार करने की कोशिश नहीं करते कि धर्म जो भावरूप से अनिह और कभी नाश न होने बाला है, पर्याय रूप से परिवर्तन शील ही है अर्थात यद्यपि निश्चय धर्म सर्वहा वही रहता है तोभी निश्चय धर्म के मूल भाव के उद्देश्य की पृति के लिये बनाई हुई त्रत नियमादि रूप कि बाएं समय के अनुमार परिवर्तित होती ही रहती हैं। आतः पर्याय परिवर्तन में धर्म का नाश न समम लेना चाहिये क्योंकि निश्चय धर्म की व्यवहारधर्म रूप पर्याय का सर्वदा एकसा रहना नितांत असंभव है। इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि जिस उद्देश्य की पूर्ति उस किया ने अपने समय में की हो उसी की पूर्ति उसकी नवीन पर्याय भी करने में पूर्ण समर्थ हो। किन्तु आज हमारी यह अवस्था हो गई है कि इसी परिवर्तन का अनादर करके पूजा और प्रतिष्ठाओं के नाम पर प्रति वर्ष हजारों, लाखों रूपया व्यर्थ वरवाद कर रहे हैं!

के कई आवार्य नामधारी भट्टानकों ने, करके जैन धर्म के कर को विकृत कर दिया है बैसा परिवर्तन किसी भी काम का नहीं होता। इसीप्रकार एक वार किया हुआ आवश्यक परिश्वर्तन भी उस परिस्थिति के बदल जाने पर विलक्षल निरुप्योंनी होकर उसटा हानिकारक बन जाता है जैसा कि मूर्तिप्जा का प्रचलित हम।

क्ष्यसं कोई शक नहीं कि पूजा और प्रतिष्ठा का प्रचलित ढंग भी किसी समय में उस समय के लिय आवश्यक समस कर ही प्रहण किया होगा परन्तु बर्तमान समय के लिय यह बिलकुल निरूपयोगी हो रहा है ऐसा मानेन में किसी भी विचारशील व्यक्ति को आपिन नहीं होनी चाहिये जब समय ने हमारी भाषा, पहनाव, रहनसहन आदि प्रत्येक कार्य को बदल दिया तो इन आवश्यक विषयों में भी परिवर्तन करने से हम इनने क्यों डरते हैं ? हमें बाहिये कि प्रत्येक पुरानी किया को नवीनता के सांबे में डाल कर, साम-यिक और उपयोगी बना लेकें क्योंकि यदि मूल उदेश्य को पूर्ति

[•] प्रतिष्ठा श्रादि प्रभावना का श्रंग है श्रार उसका उद्देश्य नाटक के दंग पर तीर्थंकरों के जीवन चरित्र का लागां पर प्रभाव डालना है। उस समय के मनुष्यों के जैसे विचार हों और जिस दंग का श्रमल में लोन से व प्रभावित हो सकते हों। प्रतिष्ठा श्रादि की भी समयानुसार वैसा ही रूप देते रहना चाहिये। जिस प्रकार न्यायशास्त्र की युक्तियों से समभने वाले पुरुष को उदाहरणों से समभान का कोई फल नहीं होता श्रोर उदाहरणों से समभने जिननी सी ही बुद्धि रखने वाले का न्याय शास्त्र के द्वारा समभाना निरर्थक होता है उसीप्रकार, वनमान समयक मनुष्य जिस प्रभावना पद्धति का प्रयोग करने से प्रभावित दोसकते हों उसे प्रयोग न करके, वही अपनी पुरानी लकीर पीटते रहने का परिश्रम निष्कल होगा !

में उससे कोई बाधा नहीं पड़ती तो उस परिवर्तन को किसी
भी ताह बुरा नहीं कहा जासकता । याद गखिये ! संसार का
यह नियम है और इनहास इसका साची है कि जा समय की
आवश्यकता के अनुसार अपने ढंग को नहीं बदलत और अपनी
उसी पुरानी लकीर को भीटन रहते हैं उनका अवश्य नाश हो
जाता है।

्राक जन क्रिकेट, प्रतिन-

वन करना हा, उनका पूजा है तथा जल नहन आदि प्रवय
आर इसांतरह आर भी आडम्बर जो आजकल किया जाता है
आर इसांतरह आर भी आडम्बर जो आजकल किया जाता है
वह सब इसके लिये अनावश्यक है। जिसप्रकार परिस्थित
वह सब इसके लिये अनावश्यक है। जिसप्रकार परिस्थित
से लाचार हांकर आपने (जिनयों ने) इस आडम्बर को प्रहण
से लाचार हांकर आपने (जिनयों ने) इस आडम्बर को प्रहण
किया उसीप्रकार अब परिस्थित बदल जाने पर उसे त्याग
किया उसीप्रकार अब परिस्थित बदल जाने पर उसे त्याग
हन में ही बुद्धिमानी है। आप लोगों के हृदयों में यह बात बैठी
हुई है कि बिना जलचंदनादि दृज्य के सहारे पूजा होही नहीं
सकती इसकारण इसमें कोई सदेह नहीं कि आप इस लक्ष
का पह कर लेखक को पूजा का बिरोधी ही सममेंगे। किया परिकार आपने आपने आपको एसा नहीं समभता। वह आरहेतों की पूजा
का पूर्ण पद्मपाती है और इसके बिचार से प्रत्येक आध्यास्मिक
का पूर्ण पद्मपाती है और इसके बिचार से प्रत्येक आध्यास्मिक

की पूजा किया करे। किन्तु वह पूजा ऐसी है जे बिना वि प्रकारके जलचंदनादि द्रव्य के बाडम्बर के एक गरीब सं व्यक्ति के द्वारा भी, जितना सा उसे अवकाश मिलसके उत्ते हो से समय में, अस्मानी से की जासकती है। अनःलेखक वे का उदेश्य पूजा का बिराध करने का नहीं प्रत्युत वर्तमान के समाज की प्रचलित पूजा-पर्दात में पुर्सा हुई बुराइयों दिख्दाने करए ते कि हैं। के प्रचलित में जिलाम होजाबा विवार करेगे ते। अपके भी विकास होजाबा विवार करेगे ते। अपके भी विकास होजाबा

यगिष यह लेख वर्तमान जैन समाज की लच्य कर वे लिखा गया है तथापि उसकी लेखन शैली इस दंग की रवे गई है कि अन्य धर्मावलंबी आई भी पृजा मिद्धान्त की समझ इस्मेन बास उठा मके तथा जैनियां की मूर्तिपृजा विषयक? उनमें ससतकेहमी फेली हुई है वह दूर होजावे।

े समाज हितेची विद्वानों की चाहिने के उस । नृपय में अपनी मीत की भंग करके समाज का चवासना विषयक पुर करने के लिए जी जान से प्रयवसार्थ हो नार्थ ।

कोटा,

सार क्र-व्यक्त है

नि-भीतास भ